कमलमणि–ग्रन्थमाला–२

सं० व्रजरत्नदास बी० ए०



श्रीयुत बा० शिशिरकुमार घोष कृत

निमाई-सन्यास नाटक

का

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक–

व्रजभूषणदास

प्रकाशक—

कमलमणि-ग्रन्थमाला-कार्यालय,

काशी।



प्रथम संस्करण] १९२७ [मू० १) सजिल्द

॥।) अजिल्द

मुद्रक—

जयकृष्णदास गुप्त,

विद्याविलास प्रेस, गोपालमन्दिर लेन, बनारस सिटी

निवेदन

भारतके इतिहासमें सोलहवीं शताद्वि विक्रमाब्द राजनैतिक तथा धार्मिक पुनरुत्थान का काल माना जाता है। इस काल में कई प्रसिद्ध मतप्रवर्तक हुए हैं जिनमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का स्थान यद्यपि इन्होंने कोई नया धर्म स्थापन नहीं किया है तब भी सर्वोच्च है। इन्होंने वैष्णव धर्म प्रचारार्थ यौवनकाल ही में सन्यास ले लिया था। इसी घटना को लेकर परमभक्त सुप्रसिद्ध श्रीयुत शिशिरकुमार घोष ने निमाई सन्यास नामक नाटक लिखा था। प्रस्तुत ग्रंथ इसी नाटक का अनुवाद है।

इस अनुवाद ग्रंथ का यह संपादकीय वक्तव्य लिखते मुझे अत्यंत आनंद तथा संतोष होता है। आनंद इस लिए कि मेरे प्रिय अनुज द्वारा यह भक्तिरस पूर्ण ग्रंथ अनूदित होकर पाठकोंके सम्मुख उपस्थित होरहा है तथा संतोष इस लिए है कि इनका यह प्रथम प्रयास होनेपर भी इतना उत्तम हुआ है। विशेष लिखना आत्मश्लाघा से दूषित होना है। अपने प्रिय छोटे भाई के विषय में यह कहना आवश्यक समझता हूँ कि इनका श्रीगौरङ्ग महाप्रभु पर अटल प्रेम है तथा श्रीराधाकृष्ण पर पूर्ण भक्ति है। इतनाही परिचय इस समय अलम् है।

आशा है कि पाठक तथा भक्तगण इस ग्रंथ को अपना कर इनका उत्साह बढ़ावेंगे।

ब्रजरत्नदास

कि जिस श्रीगौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके हिन्दी बोलने वाले अनुयायी एक दो नहीं लाखों की संख्या में वर्तमान हों उसी भाषामें धामक ग्रन्थों का ऐसा अभाव। यही समझकर मैंने कुछ लिखने का विचार किया परन्तु अपनी पूर्ण अनभिज्ञता के कारण अनुवाद करना ही उचित समझा।

आजकल पाठकों की रुचि उपन्यास और नाटकों की ओर विशेष देखकर हमने स्वर्गीय श्रीशिशिर कुमार घोष के निमाई सन्यास नाटक ही का अनुवाद करना उचित समझा। इसमें श्री चैतन्य की जीवनी तथा उपदेश भली प्रकार से वर्णित है।अनुवाद करने में भी हमने अपने को अयोग्य पाया परंतु अपनेज्येष्ठ भ्राता बाबू ब्रजरत्नदासजी बी.ए. के उत्साह दिलाने पर कार्य्य प्रारम्भ कर दिया। भाई साहेब ने अनुवाद देखने तथा उसके परिशोधन में बहुत कष्ट उठाया तथा मुझ को बराबर उत्साह दिलाते रहे। आपकी आज्ञानुसार एक छोटी सी भूमिका भी इसमें देदी गई है जिसमें संक्षेपतः श्रीगौराङ्ग की जीवनी तथा वैष्णव-धर्म संबन्धी कुछ बातें पाठकों के मनोरंजनार्थ लिख दी गई हैं।

जिन जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है उन सबके लेखकों का मैं बहुत अनुगृहीत हूं। कविराज श्रीहरिदास राय चौधरी को भी हम धन्यवाद दिए विना नहीं रह सकते क्यों कि बंग भाषा के कठिन शब्दों का अर्थ समझने में उनसे बड़ी सहायता मिली है। अब इस रूप में यह पुस्तक पाठकों के सामने उपस्थित है। यदि इसके पढ़ने से उनको कुछ लाभ होगा और श्रीगौराङ्ग के प्रति श्रद्धा और भक्ति होगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

माघ शु० १५   श्रीगौरचरणाभिलाषी
सं० १९८३   व्रजभूषणदास

उत्सर्ग–पत्र

" जै जै निताई गौर"

अहो निमाई छाँड़ि कै, कहां गए तुम मोहिं।
हौंतौ अपराधी सही, किमि न सुधारौ मोहि॥

प्रिय वत्स निमाई !

जब आप गर्भ में थे तभी इस नाटक का अनुवाद प्रारम्भ हुआ था और इसीसे आपका नाम भी यही रखा गया था। परन्तु इस नाटक के प्रकाशित होने के पूर्व आप दोही वर्ष की अवस्था में हमलोगों को छोड़कर चले गए। आपको "राम नाम सत्य है" यह वाक्य बड़ा प्रिय था और लोगों के मना करने पर चिढ़ाने के लिए और भी कहा करते थे। यह नाम आप ने गली में सुनलिया होगा। सुनने को तो सभी लड़के सुनते हैं परन्तु इस प्रकार कोई नहीं कहा करते। इसीसे ज्ञात होता है कि आप कोइ कर्म दोष से थोड़े दिन के लिए यहां आगए थे और अपना भोग भोग और हम लोगों को भी भोगा कर चल दिए। विशेष क्या लिखें। यह नाटक आपही को अर्पित करते हैं, कृपाकर स्वीकार कर अनुगृहीत कीजिए।

आपका

ब्रजभूषणदास

बिषय सूची



निमाई-सन्यास नाटक



सपरिकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का कथा-श्रवण

भूमिका

श्री नवद्वीप-किशोर-चन्द्र !
हा ! नाथ, विश्वंभर, नागरेन्द्र !
हा ! श्री शचीनंदनचित्तचोर !
प्रसीद हे विष्णुप्रियेश, गौर !

१-श्री गौराङ्ग-उदय

देखा जाता है कि आज कल धर्म की ओर लोगों की रुचि बहुत कम हो गई है। केवल कुल परम्परा-नुसार गुरु लोगों से अश्रद्धया कंठी जनेऊ अवश्य ले लेते हैं और वर्ष भर में एक दिन, वह भी क्षणभर के लिए, गुरु-पूर्णिमा को गुरुजी को अपना दर्शन दे देते हैं। कंठी जनेऊ लेने से क्या तात्पर्य, मंत्र का क्या अर्थ, गुण अथवा शक्ति, वैष्णव धर्म के सिद्धांत, उसकी श्रेष्ठता, भारत की वर्तमान अवस्था पर उसका प्रभाव, उसके धर्म-प्रवर्तक तथा उनकी जीवनी, सब धर्मों से उसकी विशेषता और उसकी अवनति के कारण आदि बातों पर कोई भी नहीं ध्यान देते। कंठी तिलक ही बस अब वैष्णवों का चिन्ह और वैष्णव धर्म का अवशेष रह गया है। सो वह भी अब नवीन सभ्य समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है और इसी से अब उसका भी लोप होता जा रहा है। धर्म की अनभिज्ञता ही इसका एक प्रधान कारण है।

आज से लगभग चार सौ वर्ष पहिले विदेशियों के आक्रमण और अत्याचार के कारण सनातन धर्म प्रायः एक बार लुप्त सा हो रहा था। भूत, प्रेत और बलिपूजा ही लोगों में विशेष प्रकार से प्रचलित हो गई थी। तीर्थ क्षेत्रों ही में कुछ देवालय

और पंडित लोग बच गए थे। विद्वानों में भी विशेषकर भक्ति पक्ष के विरोधी और शुद्ध वेदान्ती थे। दंभ बढ़ रहा था। सब कोई ब्रह्मज्ञानी ही बनते थे और भक्ति पक्ष का घोर विरोध कर वेद शास्त्रों तक की निंदा करते थे। ऐसे ही समय में प्राचीन वैष्णव-धर्म के भक्ति-मार्ग का प्रचार करने के लिए वंग देश में श्रीनवद्वीप में श्री श्रीगौराङ्ग का अवतार हुआ था। आपने थोड़े ही समय में समग्र भारत में वैष्णव-धर्म का प्रचार कर दिया और कोल भील आदि नीच जातियों से लेकर सहस्र शाखाध्यायी बड़े बड़े विद्वानों को वैष्णव बनाया। उस समय जगदीश में सार्वभौम भट्टाचार्य्य और काशी में प्रकाशानंद सरस्वती समग्र भारत में वेदान्तियों के छत्रपति माने जाते थे। इन लोगों के पास एक सहस्र शिष्य सदा वेदाध्यायन करते थे। विद्वन्मंडली में अब तक इनकी विद्वत्ता का वर्णन होता है। श्री गौराङ्ग ने इन आचार्य्यों को सहज ही में परम वैष्णव और भक्त बनादिया। इनके रचे काव्य संस्कृत भाषा के रत्न और श्री गौराङ्ग-चरित्र की उज्वलता के द्योतक हैं। उनके एक अभंग से ज्ञात होता है कि बाबा तुकाराम भी श्री गौराङ्ग के भक्त थे।

श्री गौराङ्ग ने किसी संप्रदाय को स्थापित करने का विशेष आग्रह नहीं किया और केवल भगवन्नाम का प्रचार करते हुए देशांतरों में घूमते रहे। वर्त्तमान वैष्णव समाज के श्री रामजी के तथा श्री कृष्ण के उपासकगण सभी समान भाव से आप ही के ऋणी हैं। आपने जिन कई भक्तों को वैष्णव-धर्म के गूढ़ तत्त्वों की शिक्षा देकर भक्ति प्रचारार्थ श्री वृन्दावन भेजा था उन आचार्य्यों ने जो संप्रदाय चलाया वही आज गौड़ीय-वैष्णव संप्रदाय के नाम से विख्यात है। इन आचार्य्यों ने प्राचीन समग्र संस्कृत-साहित्य-

सागर का मंथन कर उसके साररूपी संस्कृत में ६४ ग्रंथ-रत्नों की रचना की जो कि आज गोस्वामी-ग्रंथों के नाम से विख्यात हैं और ये ही सब ग्रंथ गौड़ीय-संप्रदाय के मूल हैं। जिन छ गोस्वामियों ने इनकी रचना की उनके नाम इस प्रकार हैं—श्री गोपालभट्ट, श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्री रघुनाथदास, श्री रघुनाथ भट्ट और श्री जीव गोस्वामी। इनके अतिरिक्त कवि कर्णपूर, श्री मुरारि गुप्त, श्री राय रामानंद, श्री कृष्णदास कविराज आदि महानुभावों ने संस्कृत तथा बंगभाषा में बड़े बड़े अद्वितीय ग्रंथ रचे हैं। मीराबाई, व्यासजी, रसिकमुरारी आदि भक्तों के भजन हिन्दी में भी प्रचुरता से प्राप्त हैं। निम्नलिखित एक भजन मीराबाई का प्रसिद्ध है। मीराबाई श्री रघुनाथदास गोस्वामी की शिष्या थीं। भजन—

अब तौ हरी नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखनचोरा नाम धस्यो बैरागी॥
कहँ छोड़ी वह मोहन मुरली कहँ छोड़ी सब गोपी।
मूंड़ मुड़ाइ डोरि कटि बाँधी माथे मोहन टोपी॥
मातु जसोमति माखन कारन बाँध्यो जाको पाँव।
श्यामकिशोर भए नवगोरा चैतन्य जाको नाँव॥
पीताम्बर को भाव दिखावै कटि कोपीन कसे।
दास भक्त की दासी मीरा रसना कृष्ण बसे॥

पंडितों के साथ साथ दुष्टों का भी उद्धार हुआ। जगाई मधाई नाम के दो ब्राह्मण उस समय श्री नवद्वीप के कोतवाल थे और उनसे ऐसा कोई घृणित पाप कर्म न बचा था जो कि इन लोगों ने नहीं किया हो। समग्र नदियावासी इनसे डरते और काँपते थे। इनपर श्री गौराङ्ग का ऐसा प्रभाव पड़ा था कि ये दोनों भाई सब दुष्कर्मों को छोड़कर गंगाजी के घाट की

झाड़ देनेलगे थे और आते जाते लोगों से अपने कृत पापकर्म की अति दीनता से क्षमा माँगते थे। श्री गौराङ्ग पहिले घर में कीर्तन करते थे। यहाँ के काजी ने एक दिन नगर में आकर कई भक्तों को कीर्त्तन करने से रोका। यह समाचार जब श्री गौराङ्ग को मिला तब आपने नगर-कीर्तन की आज्ञा दे दी और सब भक्तों के साथ नगर भर घूमते घूमते तथा उच्चैः-स्वर से हरि-संकीर्त्तन करते हुए काजी के घर जा धमके। काजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा हो गया और स्वतः नाचने और कीर्त्तन करने लगा। उसी समय काजी ने अपने वंशवालों को तिलाक दे दिया कि कोई कीर्त्तन का विरोध न करे। काजी ऐसा भक्त हुआ कि उसकी समाधि पर अब तक लोग दर्शन करने को जाते हैं। श्रीगौराङ्ग जब श्रीवृन्दावन गए थे तब एक यवन राजा एक काजी को लेकर शास्त्रार्थ करने आया परंतु अन्तमें हार मानकर अपने साथियों समेत वैष्णव हो गया। ये लोग पठान वैष्णवों के नाम से विख्यात हैं। दक्षिणयात्रा में भी आपने कई एक दुर्दांत दस्युओं को भक्त बनाया। श्रीयुत राजगोपाल चरियर एम० ए०,बी०एल० लिखते हैं कि "श्री चैतन्य एक सच्चे साधु की तरह सदा भगवद्-प्रेम में विभोर रहते थे। बंगाल और उड़ीसा में, जहां आप विशेष रहे थे, आपने लाखों मनुष्यों को कृष्ण-भक्त बनाया और सन् १५२७ ई० में अन्तर्ध्यान हुए *।"

---

* He himself lived a strict life of religious fervour and constant devotion and finally disappeared about 1527, A. D. having converted many millions of people to the Krishna faith in Bengal and Orissa, the chief scenes of his activity.

(Vaishnavite Reformers of India)

G. A. Natesan & Co.

श्री गौराङ्ग का अवतार सर्व सम्मति से उसी समय स्वीकृत हो चुका था और असाधारण प्रज्ञासम्पन्न देशपूज्य आचार्य्य लोग उनको अवतार मानने लग गए थे। यदि ऐसा न होता और किसी ने उसका विरोध किया होता तो अवश्य ही कुछ उसका पता होता किन्तु उसके प्रतिकूल एक अक्षर भी साहित्य में नहीं मिलता। समग्र हिन्दू-सम्प्रदायों ने कलि-युग-पावनावतार भगवान् श्री कृष्णचैतन्य द्वारा प्रवर्तित हरिनाम-संकीर्त्तन को भिन्न भिन्न रूपों में स्वीकार किया है। नाभादासजी ने भक्तमाल में स्पष्ट लिखा है "अवतार विदित पूरब मही उभय महत् देही धरी। नित्यानन्द कृष्णचैतन्य की भक्ति दशौ दिशि विस्तरी"। प्रियादासजी ने भी टीका में लिखा है कि 'जसुमति-सुत सोई सचीसुत गौर भए नए नए नेह चोज नाचे निज गन में।' शास्त्रों में भी भूरि भूरि प्रमाण मिलते हैं। अनन्तसंहिता में लिखा है—

अवतीर्णो भविष्यामि कलौ निजगणैः सह।
शचीगर्भे नवद्वीपे स्वर्धुनी परिवारिते॥
अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न प्रकाश्यं वहिर्मुखे।
भक्तावतारं भक्ताख्यं भक्तभक्तिप्रदं स्वयं॥

अर्थ—शची के गर्भ से नवद्वीप में गंगातीर पर भक्तों के समेत कलिकाल में अवतार लेंगे। भक्त रूपमें भक्तों को स्वयं भक्ति प्रदान करने के लिए मेरा यह गुप्त अवतार प्रच्छन्न रूपमें होगा और वहिर्मुखों पर प्रकट न होगा। महाभारत में विष्णु-सहस्र-नाम में श्री गौराङ्ग के नाम सुवर्णवर्ण, हेमाङ्ग, वराङ्ग आदि कहे गए हैं जैसे—

सुवर्ग वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गस्चन्दनाङ्गदि।
सन्यास कृच्छमः शान्तो निष्ठाशान्तिपरायणः॥

कपिल तंत्र में लिखा है—

जम्बूद्वीपे कलौ घोरे मायापुरे द्विजालये।
जनित्वा पार्श्वदैः सार्द्धं कीर्तनं करयिष्यति॥

घोर कलिकाल में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मायापुर में ब्राह्मण के घर सपार्षद जन्म लेकर हरि-कीर्त्तन करेंगे।

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में लिखा है—

कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णंसांगोपांगास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्त्तनप्रायैर्यजन्तिहिसुमेधसः॥

जो कृष्ण-स्वरूप हैं, गौरवर्ण (त्विषा कान्त्या अकृष्णं गौरकांतिकं) हैं और अपने अङ्ग उपाङ्ग, अस्त्र और पार्षद समेत अवतीर्ण हुए हैं। भगवान् बुद्धिमानों द्वारा कलियुग के जीवों में हरिनाम रूपी यज्ञ से पूजित होंगे।

श्री गौराङ्ग के कुछ ही पहिले प्रभु-पाद श्री माधवेंद्रपुरी और श्री अद्वैत आचार्य आदि भक्तों ने जन्म लेकर श्री कृष्ण की उपासना प्रारंभ की थी और कलिहत जीवों की दुर्दशा देखकर ये अत्यन्त दुःखी हुए थे। ये महानुभाव भगवन्विमुख इन जीवों की दुर्दशा देखकर श्री कृष्ण से कातर होकर यही प्रार्थना करते थे कि वे स्वयं प्रगट होकर इन पतित जीवों का उद्धार करें। इन महानुभावों के पहिले श्रीकृष्ण की सेवा भी एक प्रकार से लुप्त हो गई थी। श्री विष्णु की मूर्त्ति कहीं कहीं बचगई थी। पहिले पहिल बंगभाषा में चण्डीदास ने और हिन्दी में विद्यापति ने श्री राधाकृष्ण की लीला के भजन रचे हैं। श्री गौराङ्ग को इन लोगोंका भजन बहुत प्रिय था। श्री गौराङ्ग के पूर्व श्री राधिकाजी का नाम कतिपय अंतरङ्ग भक्तों को छोड़कर और कोई नहीं जानता था। श्रीराधाकृष्ण की युगल-मूर्त्ति-सेवा श्रीगौराङ्ग महाप्रभु ही के समय से आरंभ हुई। श्रीगौराङ्ग के उस दैवी शक्ति का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उस समय इतने

अधिक महात्मा और सिद्ध-पुरुष चारों ओर भारत में प्रकट हुए थे। बंगाल की तो कोई बात ही नहीं, इतने अधिक महात्मा और भक्त समग्र भारत में भी कभी एक साथ पहिले नहीं हुए थे और न फिर कभी हुए। विश्व के इतिहास में यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना हुई थी। शिशिर बाबू ने ठीक ही लिखा है कि श्रीचैतन्य के अवतार के समान बृहत् व्यापार पृथ्वी पर कहीं नहीं और कभी नहीं हुआ है। श्रीयुत के० बी० रामस्वामी बी० ए०, बी० एल० अपनी पुस्तक में लिखते हैं "कई शताब्दियोंके बाद भी श्रीचैतन्य का जीवन और आचरण, जो कि पवित्रता का गृह, आत्मोत्सर्ग का ज्वलंत दृष्टान्त और जीवमात्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से भरा हुआ है, हमलोगों को उनके प्रति श्रद्धान्वित कराता है। बुद्ध के बाद ऐसा कोई महात्मा भारत में नहीं पैदा हुआ जो कि इतना शांतिप्रिय, प्रेमी और जीवों का कल्याण करने वाला हुआ हो *।"

गौड़ीय वैष्णवों के यहां श्री कृष्ण-विग्रह के समान श्री गौराङ्ग का विग्रह पूजित होता है। काशी में जिस प्रकार गली गली विश्वेशर के, अयोध्याजी में रामजीकेऔर वृन्दावन में श्री कृष्ण के मंदिर हैं उसी प्रकार नवद्वीप में श्रीगौराङ्ग के सहस्रों मंदिर विद्यमान हैं। श्रीवृन्दावन, जगदीश, काशी आदि

---

* Still across the centuries the story of his life and character, so full of purity, self-sacrifice and a deep love of humanity moves our admiration. Never since Buddha's death, had any saint, more gentle and sweet, more humane, trodden the soil of India.

'Life of Lord Chaitanya.'

स्थानों में भी श्रीगौराङ्ग के मंदिर हैं। 'समग्र उड़ीसा में घर घर श्री चैतन्य की पूजा होती है।' * कहीं कहीं श्रीकृष्ण अथवा विष्णु के साथ श्रीगौराङ्ग की भी मूर्त्ति पूजी जाती है। यदि तत्काल सब लोग श्रीगौराङ्ग को अभ्रांत रूप से अवतार न मानते तो ऐसा कदापि न होता। जिस प्रकार बड़े बड़े राक्षसों को मारने के लिए पहिले कई अवतार हुए थे उसी प्रकार हिन्दू समाज में पाषंडरूपी महाराक्षस का दलन करने और वैष्णवधर्मस्थापन करने के लिए ही यह अवतार हुआ था।

२-भगवन्नाम महिमा

पतितस्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्य वशेनाह पुमान् नार्हन्तियातनाः।

(अजामिलोपाख्यान)

'अहा! भगवन्नाम की अपार महिमा है। ऊँचे स्थान से अथवा पैर फिसलने के कारण गिरते समय, अङ्ग भङ्ग होने के समय, सर्पादि जीवों के दंशन काल और ज्वरादि की कठिन यंत्रणा से तप्त तथा घायल होते अनायस ही हरिनाम उच्चारण करे तो मनुष्य को कोई यातना नहीं भोगनी पड़ती।' विनोद में, गाते हुए अथवा किसी प्रकार से भी भगवान का नाम लेने से जब मंगल होता है तब भक्ति के साथ नाम लेने से कितना मंगल होगा उसका अंत नहीं। हरिनाम लेने में कोई प्रतिबंध नहीं है। प्रत्येक अवस्था में जो चाहे वही नाम ले सकता है। श्रीगौराङ्ग ने हरिनाम रूपी देव-दुर्लभ अमृत कलिकाल के जीवों को पान कराया है जिसके पीने से अमरत्व से भी बढ़कर सुर-मुनि वाञ्छित

---

† The adoration of Chaitanya has become a sort of family-worship, throughout Orissa.

(Hunter's Orissa, 1872)

श्रीकृष्ण-प्रेम प्राप्त होता है। यदि हम लोग इस सुधा का पान कर आनन्द से नाम कीर्त्तन करें तो हम लोगों के आनन्द और सौभाग्य की सोमा न रहे। सत्ययुग में ध्यान द्वारा, त्रेतायुग में यज्ञ द्वारा और द्वापर में परिचर्य्या द्वारा जो पद प्राप्त होता था वही कलिकाल में केवल श्री हरिनाम द्वारा प्राप्त होता है। कलिपावनावतार श्रीगौराङ्ग महाप्रभु ही ने युगधर्म हरिनाम का प्रचार किया है। हरिनाम-कीर्त्तन भक्तों का प्राण से भी प्यारा अमूल्य धन है। भगवान ने कृपाकर यह धन सबको समान भाव से दिया है। यदि कोई इस दुर्लभ मनुष्य-जन्म को सफल करना चाहे, अपने दग्ध हृदय को शीतल करना चाहे और समग्र पाप वासनाओं को दूर कर अपने मन को निर्मल कर प्रेमानन्द में विभोर होना चाहे तो आनन्द से हरिनाम-संकीर्तन करे। इस मृत्यु-लोक में अमरत्व प्राप्त करने का उपाय एक मात्र भगवन्नाम है। हरि नाम के निकट न जाति का विचार है, न काल का विचार है और न स्थान का विचार है। भगवान ने अनुग्रह कर हरि नाम देकर कलिकाल को धन्य कर दिया है।

श्रीगौराङ्ग के पूर्व हरिनाम-संकीर्तन का कोई नियमित रूप और प्रचार नहीं था। जनता इससे पूर्ण अनभिज्ञ थी। जब श्रीगौराङ्ग को खोल करताल गंभीर स्वर से बजने लगा, जब मधुर हरिनाम-संकीर्तन की ध्वनि चारों दिशाओं में गूँजती हुई भारत भूमि को पवित्र करने लगी, जब भक्त लोग चारों ओर से आकर श्रीगौराङ्ग के चरण कमल पर आत्म-समर्पण करने लगे, जब श्रीगौराङ्ग की मोहिनी मूर्ति, अद्भुत शक्ति तथा मधुर कीर्त्तन जनता का मन मुग्ध करने लगी, जब श्रीगौराङ्ग ने नवद्वीप के नवाब-गौड़ के बादशाह हुसेन शाह के नाती को दमनकर नामकीर्तन की विजय वैजयन्ती

फहराई, तब जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ, नाम में रुचि हुई और सब ने नाम का आश्रय लिया। सब संप्रदायों में किसी न किसी रूप में नाम ही की विशेषता दिखलाई पड़ने लगी। समग्र भारत में साधु और महात्मा भगवन्नाम का गुण गाते हुए चारों ओर देवर्षि नारद के समान नाना यंत्र लिए हुए घूमते दिखलाई पड़ने लगे। जनता ने इन लोगों का आदर किया और उनके शिष्य होने लगे। परन्तु यह आनन्द का प्रकाश जो श्रीगौराङ्ग के उदय होने से हुआ था कई शताब्दियों बाद मंद पड़ने लगा और अब वैष्णवों में वह भक्ति-भाव बहुत कम बच रहा है। हम लोग भगवन्नाम को भूल रहे हैं।

नाम सर्व शक्तिमान है। उसका गुण कोई वर्णन नहीं कर सकता। एक बार भी नाम लेने से सब पाप दूर हो जाते हैं। नाम के बल पर किए गए पाप का कोई प्रायश्चित नहीं केवल भक्ति से हरिनाम-कीर्त्तन ही इसका प्रायश्चित्त है। एक बार हृदय की सब कपटता त्याग कर दोनों हाथ उठा कर "हे हरि रक्षा करो" यह कह कर भगवान की शरण लेते ही पाप का लेश भी नहीं रह जाता। श्रीहरिभक्तिविलास में लिखा है—हरिर्नाम परंजप्यं, धेयं गेयं निरन्तरम्।

कीर्त्तनीयश्च बहुधा निर्वृत्तीर्बहुधेच्छता ॥

(जाबालि संहिता)

एक प्राचीन कवि ने नाम-महात्म्य पर एक कवित्त इस प्रकार लिखा है—

याही मंत्र देत सुख-पुञ्ज उच्चपद क्योंकि
कैयो कोटि हाथ जोरि रहत खरे खरे।
याही मंत्र के प्रभाव भए मान भाव मंत्र
याही ते सुने कि भवसागर तरे तरे।

याही महा मंत्र याहि जपिबो सदैव याते
कलुष कलेवर के रहत परे परे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

श्रीगौराङ्ग ने नाम माहत्म्य पर कई श्लोक जो भक्तों से समय समय पर कहे हैं वह आगे शिक्षाष्टक में लिखे हैं ।

३–वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता

श्वपचोऽपि महीपाल विष्णोर्भक्तो द्विजाधिकः ।
विष्णु–भक्तिविहीनोयः यतीश्च श्वपचाधिकः ॥

मनुष्य मात्र में सुख की इच्छा प्रबल रहती है। यह सुख दो प्रकार का होता है, एक इस लोक का और दूसरा परलोक का। जगत के सब आडंबर सांसारिक सुख भोगने ही के लिए हैं। परम कारुणीक जगदीश्वर ने हम लोगों को मनुष्य का शरीर केवल सांसारिक सुख भोगने और फिर दुख उठाने को नहीं दिया है प्रत्युत भगवत् पदारविन्द की सेवा का अधिकारी बनाकर परम पद का भागी बनाया है। विशेषकर भगवान का भजन लोग दो प्रकार से करते हैं—एक निराकार वाद और दूसरा साकार वाद। 'ब्रह्म, ब्रह्म' कहना तो सहज है परन्तु आचरण करना बड़ा कठिन है और इसी से साधारण जनता का झुकाव इस ओर नहीं होता। साकार की उपासना लोगों को विशेष रुचिकर होतो है इसो से स्वामी शंकराचार्य्य के बाद वैष्णवों का पुनः प्राबल्य हो उठा। किन्तु भजन प्रणाली के किसी एक निर्दिष्ट मार्ग का न प्रचार होने से उस से कोई विशेष लाभ जनता को नहीं हुआ। श्रीगौराङ्ग ने अवतार लेकर आचंडाल जीवमात्र को वैष्णव धर्म का उपदेश देकर कृतार्थ कर दिया। 'जाति पाँति पूछै नहीं कोई हरि को भजै सो हरि का होई'।

वैष्णव धर्म प्रेम का धर्म है। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु ने इस धर्म का परिपूर्ण रूप से विकाश किया है। श्रीमद्भागवतादि ग्रंथों में इसका वर्णन है परन्तु कोई कोई विज्ञलोग ही उससे लाभ उठाते थे। श्रीगौराङ्ग ही ने इस अनिर्वचनीय प्रेमभक्ति को पहिले भगवन्विमुख कलिहत जीवों को वितरण कर उनका उद्धार किया। प्रेम ही इस धर्म की विशेषता है। ज्ञान विशेष का नाम प्रेम है। भारतेन्दुजी ने प्रेम सरोवर में लिखा है:—

जेहि लहि पुनि कछु लहन की, आस न जिय में होय।
जयति जगत पावन करन, प्रेम बरन यह दोय।

यह प्रेम सर्वशक्तिमान भगवान की आह्लादिनीशक्ति का सार, अर्थात् जिस शक्ति द्वारा आह्लाद रूप भगवान स्वयं आह्लाद प्राप्त करते हैं और भक्तों को आह्लाद देते हैं, उसी का नाम आह्लादिनीशक्ति है और प्रेम उसी शक्ति का सार है। इससे यही तात्पर्य्य निकला कि भगवान और भक्त के समागम में जो विशेष आनन्द है वही प्रेम है। भाषाद्वारा प्रेम का वर्णन नहीं हो सकता। श्री सनातन को शिक्षा देते हुए श्री श्रीगौराङ्ग ने कहा था "सनातन, जीव का चरम लक्ष्य प्रेमधन की प्राप्ति है। शास्त्रों में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष यही चार पुरुषार्थों का वर्णन है किन्तु भक्ति-शास्त्रानुसार प्रेम पंचम पुरुषार्थ है। इसीसे श्री भगवान वश में होते हैं।" प्रेम ही परम फल और परम पुरुषार्थ है। यह प्रेम शुद्ध भक्ति से उत्पन्न होता है। श्री भक्तिरसामृतसिंधु में श्रीरूप गोस्वामी ने शुद्ध भक्ति का लक्षण इस प्रकार कहा है। यथा:-

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

मुक्ति भुक्ति आदि कामनाओं से रहित, ज्ञान तथा कर्म से अनाच्छादित और लगन के साथ श्री कृष्ण का चिंतन करना उत्तम भक्ति है॥ ईश्वर के ऊपर अत्यधिक अनुराग ही को भक्ति कहते हैं।

भगवान श्री चैतन्य देव ने जीवों को यही शिक्षा दी है कि भक्ति के ईश्वरार्पिता होने से अनान्य वृत्ति समूह उसके अधीन हो जाते हैं। अर्थात ज्ञान को जीव ब्रह्म की अभेदकता स्थापित करने में नहीं परन्तु भक्त भजनीय तत्व के अनुसंधान में लगाना चाहिए और कर्म को स्वर्गादि की इच्छा में नहीं परन्तु भगवद् सेवा की ओर प्रवृत्त कराना चाहिए। 'न मे प्रियश्चतुर्वेदीमद्भक्तः श्वपचः प्रियः' यह श्री मुख का वाक्य है। वैष्णव धर्म में कोई विशेष आडंबर की आवश्यकता नहीं है, केवल श्रद्धा और प्रेम से भगवन्नाम लेना ही इसका सार है। आज कल जब कि सब पदार्थ दूषित हो रहे हैं, जीविका निर्वाह में लगे रहने से किसी को समय नहीं कि पूजा पाठ करे, द्रव्य नहीं जो दान और यज्ञ करे, यदि द्रव्य है तो श्रद्धा नहीं और यदि श्रद्धा भी है तो धर्म करने का कोई उत्तम फल नहीं दिखलाई पड़ता। सम्यकरूप से सांसारिक कुल वासनाओं को त्याग कर निष्काम होकर श्री कृष्ण के चरण-कमल का अनुराग होना ही जीवमात्र का कर्त्तव्य है। शास्त्रकार ने इसी हेतु कहा है:—

हरेर्नामैव नामैव, नामैव गति केवलम्।
कलौनास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

४—वैष्णवों का कर्तव्य

परदुःखेनात्मदुःखं मन्यन्ते ये नृपोत्तम।
भगवद्धर्म निरतास्ते नरा वैष्णवा नृप॥
(स्कंद पुराण)

हे राजन् ! दूसरे का दुःख देख कर जिसका हृदय दुःखित होता है और उसको अपने दुःख के समान मानता है, वही भगवद्भजनपरायण व्यक्ति ही वैष्णव कहा जाता है। इस श्लोक से यही तात्पर्य निकला कि वैष्णवों के दो कर्तव्य है। एक परोपकार करना और दूसरा भगवन्नाम कीर्त्तन। एक कवि ने व्यासजी के अट्ठारहों पुराण का सार यही निकाला है। "परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्" । परोपकार करना ही पुण्य और दूसरों को कष्ट देना ही पाप है। इस संसार में थोड़ा बहुत उपकार तो सभी किया करते है परन्तु संसारिक ताप से तप्त भगवन्विमुख जीव को भगवान की ओर लगाना वैष्णवों का काम हैं। श्री चरितामृत में लिखा है किः—

वैष्णव को कर्तव्य यह. प्रेम भक्ति जग देत।
निज कारज नाही तबौ, घूमत जग के हेत ॥

इस से बढ़कर कोई उपकार नहीं हो सकता। दीन होकर दूसरों को उपदेश देना, जगत का हित करना और स्वतः कुछ न इच्छा रखनी चाहिए। श्री चरितामृत में श्रीगौराङ्ग ने एक बार भक्तों से कहा था—

तृण सम आपुहिं समुझिकै, करहिं न गर्व सुजान।
तरु सम परहित में निरत, रहहिं सदा गुन खान ॥
निज छाया फल फूल कों, देत सबहिं जे जात।
उलटि न माँगत है कछू, खंड खंड ह्वै जात ॥
वैष्णव ह्वै तजि गर्व कों, सब कर कर सनमान।
कृष्ण बसत सब जीव महँ, यह निश्चय उरआन ॥
भजहु कृष्ण को होइ अस, मिलहहिं तबहिं मुरारि।
कृष्ण-चरण रति उपजिहै, जेहि चाहत त्रिपुरारि ॥

दीनता वैष्णवों का प्रधान गुण है। वंग-सम्राट हुसेन शाह का मंत्रि-पद त्याग कर जब श्रीरूप और सनातन श्री गौराङ्ग के दर्शन को गए तो मुख में तृण रखकर दूर ही से जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम कर अत्यन्त दीनता से बोले "महाराज हम लोग महापापी, विषयी और नीच हैं। हम लोगों का कैसे उद्धार होगा।" श्रीगौराङ्ग को उठते देखकर ये लोग यह कहते हुए भागने लगे। "हम लोग अस्पृश्य, पतित, यवनों के दास यवन है। हमको मत छूइए।" श्रीगौराङ्ग इन लोगों के कातर वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले "तुम लोग अपनी दीनता छोड़ो। तुम्हारे दीन वचन से मेरा हृदय फटा जाता है। तुम लोग भक्त हो।" यह कहकर श्रीगौराङ्ग ने उन लोगों को गले से लगा लिया। वैष्णवों में दीनता होना परम आवश्यक हैं।

वैष्णवों को लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्गुणों को मल के सदृश मानकर त्याग करना उचित है। लोभ के वश होकर मनुष्य कामिनी-काञ्चन के लिए कौन सा पाप कर्म नहीं कर सकता। श्रीगुरु के मुख से अपना कर्तव्य सुनकर वैष्णवों को सदा सदाचार में निरत रहना चाहिए। सब दुर्गुणों से दूर रहने के लिए और भगवद्भक्ति की प्राप्ति के निमित्त जोकि वैष्णवों का लक्ष्य है, साधु संग अवश्य करना उचित है। श्रीचरितामृत में कहा है "कृष्ण-भक्ति जन्म मूल हय साधु-संग।" साधुओं के यहाँ भगवद्कथा और नामकीर्तन से भिन्न दूसरी कोई चर्चा नहीं होती। श्रीमद्भागवत में श्रीभगवान ने कहा है—

मदाश्रयाः कथामृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गत चेतसः।

जो कोई मेरी कथा सर्वदा श्रवण और कीर्त्तन करते हैं मेरे में भक्ति रखते है वे संसार के विविध ताप से पीड़ित नहीं होते। भगवद्कथा श्रवण और नाम कीर्तन ही वैष्णवों का प्रधान कर्तव्य है। वैष्णवों का एक मात्र कर्तव्य यह है कि चार वैष्णव एकत्रित होकर उच्चनामकीर्तन करैं क्योंकि इसी में सब कुछ है "याही में भागवत और याही में गीता।" श्रीहरिभक्तिविलास के एकादश विलास में वैष्णवों के कर्तव्य विस्तार से वर्णित हैं।

८—वैष्णव धर्म की वर्तमान अवस्था

श्रीकृष्ण जिस प्रेम का आदर्श स्थापन करने के लिए श्री वृन्दावन में प्रगट हुए थे उसी अलौकिक प्रेम को जगत के जीवों को वितरण करने के लिए ही श्रीगौराङ्ग के रूप में श्रीनवद्वीप में पुनः प्रगट हुए। वही काम-गंधहीन प्रेम हम लोगों में आज कल किस विकृत भाव से फैल रहा है जिसको देखकर हृदय काँप उठता है। बाल ब्रह्मचारी योगीन्द्र श्रीशुकदेवजी ने जिस निष्काम प्रेम का वर्णन श्रीभागवत में किया है आज कल के महानुभाव लोग उसी अप्राकृत प्रेम को दूषित भाव से प्राकृत नायक और नायिका बन कर समाज को कलुषित कर रहे हैं। श्रीगौराङ्ग ने अपने परिकरों के साथ अनेक लीला कर जगत को यह दिखलादिया है कि श्रीकृष्ण-लीला में काम का गंध भी नहीं था। श्रीगौराङ्ग ने जब धर्म प्रचार का कार्य प्रारंभ किया तब उन्होंने देखा कि घर में रह कर यह काम नहीं हो सकता। जो स्वतः वैसा आचरण करते हुए लोगों को उपदेश देता है वही प्रकृत शिक्षक है। इसी से श्रीगौराङ्ग ने चौबीस वर्ष की अवस्था में श्रीविष्णु-प्रियाजी को त्यागकर संन्यास लेकर जगत को यही दिखलाया

कि श्रीकृष्ण-भजन करने के लिए प्रकृति की कोई आवश्यकता नहीं है। छोटे हरिदास को एक स्त्री के यहाँ से भिक्षा माँग लाने पर श्रीगौराङ्ग ने उनका त्याग दिया और यही कहा कि "वैष्णव होकर जो प्रकृति से बात चीत करता है हम स्वप्न में भी उसका मुख नहीं देखना चाहते।" छोटे हरिदास परम भक्त वैष्णव थे और माधवी दासी भी एक उच्च कोटि की भक्त वैष्णवी थी परन्तु श्रीगौराङ्ग ने जनसाधारण के ही शिक्षार्थ यह आज्ञा दी थी। आजकल की अवस्था कहीं विपरीत है। शिक्षित समाज का वैष्णव-धर्म की ओर इसी से नहीं झुकाव होता और कोई धर्मपिपासु व्यक्ति इस को नहीं स्वीकार करता।

हम लोग जब कोई वैष्णव-ग्रंथ पढ़ना आरम्भ करते हैं तो पहिले रासपञ्चाध्यायी और गीतगोविन्द ही पढ़ते हैं परन्तु वैष्णव धर्म की भित्ति-स्वरूप श्रीगोस्वामी ग्रंथों को नहीं पढ़ते। श्रीगोविन्दभाष्य, श्रीलघुभागवतामृत, श्रीबृहद्भागवतामृत, भक्तिरसामृतसिंधु आदि ग्रंथों को पढ़कर श्रीकृष्ण का स्वरूप समझकर तब प्रेमपूर्वक भजन करना उचित है। इन ग्रंथों को पढ़ने ही से वैष्णव-धर्म का यथार्थ रूप समझ में आसकता है। वैष्णव धर्म कितना मधुर, कितना उज्ज्वल और कितना पवित्र है यह हम तभी जान सकते हैं। बिना इन ग्रंथों के पढ़े श्रीमद्भागवतादि ग्रंथ और श्रीकृष्ण-लीला हम नहीं समझ सकते। जो ग्रंथ नहीं पढ़ सकते उनके लिए भक्तियुक्त हो कर भगवन्नाम-कीर्त्तन और श्रीगौराङ्ग चरित्र का पठन ही पर्याप्त है। जिस वैष्णव धर्म का आदर्श यह था कि काम रहते प्रेम नहीं हो सकता आज कल वही काम वैष्णवों की प्रत्येक सभा और संस्थाओं में दूध पानी सा मिल गया है। श्रीकृष्ण-प्रेम-साधन का प्रधान कंटक काम

२

ही हम लोगों के रोम रोम में भिज गया है। श्री चैतन्य-चरितामृत में लिखा है "नित्य सिद्धि कृष्ण-प्रेम साध्य कभू नय, श्रवणादि शुद्ध चित्ते करय उदय"। जोव मात्र के हृदय में श्रीकृष्ण-प्रेम वर्तमान है परन्तु हम लोगों के पाप कर्म से ढँका रहता है। इस आवरण को भगवत्-कथा श्रवण, मनन, कीर्त्तन आदि सदुपायों द्वारा दूर कर देने पर वह प्रेम पुनः उदय हो जाता है। श्रीकृष्ण ही हम लोगों के साधन हैं, श्रीकृष्ण ही भजन हैं और श्रीकृष्ण-प्राप्ति ही हमारा परम लक्ष्य है। अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं। आज कल उसी साधन भगवत्-कथा श्रवण, दर्शन आदि में काम प्रचंड हो रहा है जिससे मन निर्मल होने के बदले और भी गँदला हो रहा है। भगवान ही रक्षा करे तभी कुछ हो सकता है।

वैष्णव धर्म व्यक्ति या जाति विशेष का धर्म न होकर मनुष्य मात्र की प्रकृति के अनुकूल है। एक मात्र वैष्णव धर्म ही से मनुष्य पूर्ण हो सकता है। वैष्णव एक साथ योगी, कर्म्मी, ज्ञानी और भक्त है। वैष्णव धर्म में त्याग ही प्रधान है, यह भोग का धर्म नहीं है। नारद पञ्चरात्रि में लिखा है "हृषीकेन हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते"। इन्द्रिय द्वारा इन्द्रियपति श्रीकृष्ण के भजन ही को भक्ति कहते हैं। वैष्णव धर्म का पूरा ज्ञान विना श्रीगोस्वामी-ग्रंथों के पढ़े नहीं हो सकता। उसको न पढ़ने ही से हम लोग धर्म के विषय में कुछ नहीं जानते। अपना धर्म छोड़ कर हम लोग दूसरे मार्ग की ओर जा रहे हैं। एक बार यदि आचार्य्य लोग कटिबद्ध होकर खड़े हो जायँ तो सब दोष दूर हो सकता है।

६–दीक्षा का प्रमाण

कृपया कृष्ण देवस्य तद्भक्तजन-सङ्गतः ।
भक्तेर्माहात्म्यमाकर्ण्य तामिच्छन् सद्गुरुं भजेत् ॥
अत्रानुभूयते नित्यं दुःखश्रेणी परत्र च ।
दुःसहा श्रूयते शास्त्रात्तितीर्षेदपि तां सुधी ॥
(श्री हरिभक्ति-विलास)

देवाधिदेव श्रीकृष्ण के परम अनुग्रह से उनके भक्तों के संग से भक्ति का माहात्म्य सुनकर उस भक्ति के प्राप्त्यर्थ सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करना उचित है। संसार में नित्य ही दुःख भोगना पड़ता है और शास्त्रों में भी यही दुःख गाथा सुनी जाती है। अतएव बुद्धिमान पुरुषों का यही कर्त्तव्य है कि इस दुःख-सागर से पार होने के लिए सद्गुरु रूपी नौका की शरण लें। इस अति दुर्लभ मनुष्य योनि को वृथा विषय भोगादि में नष्ट न कर भगवद्-प्राप्ति का उपाय करना उचित है कारण कि विषय भोग तो सभी योनि में हो सकता है परन्तु भगवद्-स्मरण केवल इसी योनि में हो सकता है। इसी हेतु शास्त्रोपदिष्ट मार्ग का अनुसरण कर ही मनुष्य अपने जन्म को सार्थक कर सकता है। भगवान ने अर्जुन से कहा है "हे अर्जुन! कर्तव्याकर्तव्य का विचार करते हुए शास्त्र ही को प्रमाण मानना। शास्त्र के अनुकूल ही कार्य करना तुम्हारा कर्तव्य है"। श्रीगुरुदेव का आश्रय ग्रहण कर उनके मुख से उपदेश सुनकर तदनुसार कर्म करना चाहिए। वैष्णव तंत्र में लिखा है—

"तत्र श्रीवासुदेवस्य सर्वदेव शिरोमणेः ।
पादाम्बुजैकभागैव दीक्षा ग्राह्या मनीषिभिः ॥

सर्वदेवताओं के शिरोमणि श्रीवासुदेव के श्रीचरण-कमल

की सेवा की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को पहिले श्रीगुरुदेव के निकट दीक्षा लेना चाहिए। भगवान ने स्वयं कहा है कि मदभिज्ञ अर्थात् मेरे भक्ति-भाव को पूर्ण रूप से जाननेवाले मदात्मक शांत गुरु की ही उपासना करना चाहिए। गुरु को कृष्ण-भक्त, अपने विहित आचार में निरत, सर्वशास्त्रज्ञ, प्रियवादी, वैष्णव, शिष्यवत्सल, कृतज्ञ और कृपा का धाम होना चाहिए।

मंत्र लेने के बाद मंत्र देवता की पूजा और मंत्र का जप अवश्य करना चाहिए क्योंकि न करने से अनिष्ट होता है। शिष्य को विनयी, सत्यभाषी, कामक्रोधरहित, गुरु के चरणों का भक्त और तत्त्वजिज्ञासु होना चाहिए। अंध-विश्वास के वश होकर किसी बात को ठीक मान लेना उचित नहीं है किन्तु अचिन्त्य पदार्थ के ऊपर तर्क करना भी ठीक नहीं। तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं-तर्का प्रतिष्ठानात्। जिज्ञासु होकर श्रीगुरु के निकट संशय शून्य हो कर अनुकूल तर्क करना ठीक है। श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है "अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति"। अज्ञ, अश्रद्धान्वित और संशयापन्न तीनों व्यक्ति नष्टता को प्राप्त होते हैं। अतएव श्रीगुरु से उपदेश लेकर शास्त्रानुसार काम करना चाहिए। श्रीनरोत्तमदास ठाकुर ने कहा है "साधु-शास्त्र गुरु वाक्य, हृदय माँझ एक करि, एक मन करहु भजन।"

७-श्रीगौराङ्ग का जीवनचरित्र

दृष्टं न शास्त्रं गुरुवो न दृष्टो-
विवेचितं नापि बुधैःस्वबुध्या।
यथा तथा जल्पतु बाल भावा-
त्तथैव मे गौरहरिः प्रसोदतु॥

(प्रबोधानंद सरस्वती)

जगन्नाथ मिश्र उपनाम पुरंधर एक वैदिक ब्राह्मण सिलहट से आकर नवद्वीप में गंगा के किनारे बसगए थे। इन्होंने नीलाम्बर चक्रवर्ती की कन्या शची देवी से विवाह किया। इन लोगों को आठ कन्याएँ हुई जो सब लड़कपन ही में मर गईं। नवीं संतान श्रीविश्वरूप हुए। आप बड़े पंडित और विरक्त थे। सोलह वर्ष की अवस्था में, जब इनके विवाह की बात चीत होने लगी, तब आप रात को घर छोड़कर दक्षिण चले गए और सन्यास ले लिया। आप का फिर कुछ पता न लगा। विश्वरूपजी जब दस वर्ष के थे तब श्री गौराङ्ग का जन्म हुआ। सम्वत् १५४२ फाल्गुन शुक्र पूर्णिमा (सन् १४८६ ई०) को जिस दिन चंद्र-ग्रहण था हमारे चरित-नायक श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु का प्रादुर्भाव हुआ। ग्रहण के कारण नवद्वीप में बहुत लोग स्नान करने आए थे और इन लोगों के मुख से निकली हुई हरिनाम की ध्वनि चारों ओर सुनाई पड़ रही थी। इसी हरिनाम के मध्य में आप भूमिष्ट हुए। आप अत्यन्त सुन्दर थे। आपका शरीर स्वर्ण के समान पीत वर्ण का था इसीसे आप को लोग गौराङ्ग कहने लगे।

आपकी सुन्दरता दिन दिन बढ़ने लगी। जो जितना देखता उसकी उतनी ही इच्छा देखने की होती। पड़ोस की स्त्रियाँ और बालक आपको बराबर घेरे रहते थे। श्रीवास और उन की स्त्री मालिनी जो कि जगन्नाथ मिश्र के पड़ोसी और मित्र थे बराबर बालक को खेलाया करते और बहुत चाहते थे। जब आप रोने लगते तब और किसी उपाय से नहीं चुप होते थे, केवल हरिनाम सुनने ही से शांत होते थे। आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। एक बार आपने मिट्टी खोली। माता के मना करने पर आप ने कहा "अन्न मिट्टी ही से पैदा होता है।

मट्टी और अन्न में क्या भेद है ?" माता ने प्रसन्न हो कर कहा "तुमको इतना वेदान्त किसने पढ़ाया। अन्न खाने से देह पुष्ट होती है और मिट्टी खाने से रोग पैदा होता है।" एक बार आप ऐसे ही मचल पड़े और हरिनाम सुनने पर भी न शांत हुए रोते ही रहे। लोगों के बहुत पूछने पर आपने कहा "हिरण्य और जगदीश पंडित आज एकादशी को भगवान को जो भोग लगा रहे हैं उसे ले आओ। हम उसे खाकर शांत होंगे।" इस बात की सूचना जब पंडितों को मिली तो उन लोगों ने प्रसाद लाकर आपके सामने रख दिया। आपने थोड़ा सा उसमें से खा लिया और चुप हो गए। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने छोटे बालक को इनका नाम और एकादशी का दिन कैसे मालूम हुआ। पण्डितों ने कहा कि इस बालक के शरीर में भगवान का वास है। कभी आप बड़े सुशील और शांत हो जाते और कभी बड़े खिलवाड़ी हो जाते। पड़ोसिओं के यहाँ से कभी कभी फल, मिठाई और भोग आदि उठा लाते। आप लड़कों को लेकर हरिनाम कहते हुए अद्‌भुत नृत्य करते थे। आते जाते लोग सब काम छोड़कर खड़े हो जाते और आपका नृत्य देखकर ऐसे मोहित हो जाते कि स्वतः भी नाचने और हरिनाम कहने लगते। लोगों को आपका नृत्य इतना प्रिय था कि आपको मिठाई देकर कहते कि हम हरिनाम गाते हैं तुम नाचो।

पाँचवें वर्ष में आप पंडित गंगादास के यहाँ पढ़ने बैठे। पढ़ने में आप बड़े दक्ष थे। एक बार पाठ देखते ही याद कर लेते। कुछ दिन बाद आपका कर्ण-छेदन और मुंडन हुआ। आपको तैरना बहुत प्रिय था। पाठशाला से लौटती समय आप गंगाजी अपने सहपाठिओं समेत स्नान करने जाते और घंटो तैरा करते। स्नान करने वालों को

भी आप बहुत तंग करते। लोगों का भोग खा जाते, पूजा की सामग्री गंगाजी में फेंक देते, छींटा मार कर सब का कपड़ा भिगो देते और लड़कों की टाँग पकड़कर गंगाजी में घसीट ले जाते थे। परन्तु इतने पर भी आप को लोग बहुत चाहते और आप से खेलवाड़ करने का सभी का जी चाहता था। जगन्नाथ मिश्र ने बड़े धूमधाम से आप का यज्ञोपवीत किया परन्तु थोड़े ही दिन बाद मिश्र जी वैकुंठ को सिधार गए। आपका पाठ भी अभी समाप्त नहीं हुआ था। उस समय आपकी अवस्था नव वर्ष की थी। कुछ दिन बाद शची मां ने आपका विवाह वल्लभाचार्य्य की लड़की लक्ष्मी देवी से कर दिया। अपना पाठ समाप्त करने पर निमाई पंडित ने सोलह वर्ष में नवद्वीप में एक पाठशाला खोलदी। आपकी विद्वत्ता का पता इसी से चलता है कि नवद्वीप में, जो कि उस समय विद्या का केन्द्र था और जहाँ बड़े बड़े और बूढ़े पंडित विद्यार्थियों को पढ़ाते थे, वहाँ निमाई ने इतनी छोटी अवस्था में सब विद्या सीख कर पाठशाला खोली। आपकी पाठशाला में इतने अधिक विद्यार्थी आने लगे कि आपको उनको लौटा देना पड़ता था।

कुछ दिन बाद आप पूर्वबंग यात्रा करने को गए। जब आप घर लौट कर आए तो आपकी स्त्री का देहांत हो चुका था। माता के अनुरोध से आपका दूसरा विवाह श्रीमती विष्णुप्रियाजी से हुआ। सब स्थानों से दिग्विजय करते हुए केशव काश्मीरी नाम के एक पंडित नवद्वीप में आए। कोई पंडित उनके सामने नहीं गया। आपने सहज में उनको गंगातीर पर परास्त कर कृष्ण-भक्त बना दिया। आपकी ख्याति इससे और बढ़ी और पंडितों में आपका बड़ा सम्मान होने लगा। तब पिता जी की गया करने आप गया गए।

भगवान का श्रीचरण देखते ही आप मुग्ध हो गए। श्री ईश्वरपुरी से भी आप की वहीं भेंट हुई और उन्होंने आपको वहीं मंत्र भी दिया। मंत्र लेते ही आप विह्वल हो उठे और कृष्ण कृष्ण कह कर रोते रोते मूर्छित हो गए। तभी से आपका कायापलट हो गया और पंडित निमाई भक्त निमाई हो गए। रात दिन कृष्ण कृष्ण जपते और कृष्ण भिन्न कोई दूसरी बात नहीं कहते थे। गया जी से आप श्री वृन्दावन जाना चाहते थे परन्तु साथिओं ने बड़े यत्न से आपको सँभाला और कुशल पूर्वक घर ले आए। घर पर भी आप कृष्ण कृष्ण कहा करते और जब पाठशाला में गए तो विद्यार्थियों को भी यही उपदेश दिया "यदि श्री कृष्ण का भजन करना हो तो यहाँ रहो नहीं तो दूसरी जगह चले जाओ। सब पाठ का सार श्री कृष्ण-नाम ही है"। विद्यार्थियों को आप सब पाठ का अर्थ कृष्ण ही बताते और कृष्ण ही का गुण गाते। कितने विद्यार्थी आपके साथ पाठ छोड़ कर कीर्त्तन करने लगे। आपके गुरुजी ने भी आपको समझाया परन्तु आप ने उनको भी कृष्ण ही का उपदेश दिया।

आपको इस अवस्था का समाचार नगर भर में फैल गया और भक्त लोग आपके पास भेंट करने आने लगे। आप की इन लोगों से बड़ी प्रीति हो गई और आप इन लोगों के घर पर जाकर कीर्त्तन करते। इन लोगों में मुख्य मुख्य श्री अद्वैताचार्य्य, श्रीनित्यानन्द, श्रीहरिदास, श्रीवास, श्रीगदाधर पंडित और श्रीमुरारि गुप्त थे। श्रीवास के घर पर आप विशेष रहते थे और वहीं भक्तों के साथ कीर्तन और सत्-संग करते। आपका प्रभाव जनता पर विशेष पड़ा और बहुत लोग आपके दल में मिलने लगे। पंडितों का आदर कम हो गया और

इसी से वे लोग आपसे विरोध करने लगे। परन्तु नदी का प्रवाह कोई रोक नहीं सकता। आपका जितना विरोध हुआ उतना ही आपका प्रभाव बढ़ता गया और चारों ओर से लोग आकर आप से मिलने लगे। श्रीगौराङ्ग अपने भक्तों को नगर में हरिनाम प्रचारार्थ बराबर भेजते थे। ये लोग नगर में सब के द्वार पर जाकर यही भिक्षा माँगते कि तुम लोग कृपाकर भगवान का नाम लो।

इस नगर के काजी ने दो ब्राह्मण जगाई और मधाई को यहां का कोतवाल बनादिया था। इनसे प्रजा थरथर काँपती थी। ये मनमाना अत्याचार और पाप करते थे और मनहीमन श्री गौराङ्ग से कुढ़ते थे। एकबार श्री नित्यानन्द और श्री हरिदास नाम प्रचारार्थ मार्ग में जा रहे थे। संयोग से येलोग भी उधर से आ रहे थे। भक्तों को देखतेही वे जल उठे परन्तु न मालूम क्या समझ खड़े होगए। इनलोगों को देखकर श्री नित्यानन्द को बड़ी दया आई कि ये ब्राह्मण के लड़के होकर इतना पाप करते हैं। इनकी क्या दशा होगी। इनका अवश्य उद्धार करना चाहिए। यह सोचकर आप हाथ जोड़कर उनके सामने जा खड़े हुए और बोले "भाई एक बार हरिनाम बोलो। इस संसार में हरिनाम से बढ़कर और कुछ नहीं है।" जगाई तो चुपरहा परन्तु मधाई ने, जो नशे में चूर हो रहा था मारे क्रोध के मट्टी का एक फूटा बर्तन जो पासही पड़ा था उठाकर श्री नित्यानन्द के मस्तक पर मारा। श्री नित्यानन्द के मस्तक से रुधिर बहने लगा परन्तु आप क्रोध न करके और भी कातर होकर उसके पैर पर गिर पड़े और बोले "भाई तुम मुझे और मारो परन्तु एक बार मुख से हरिनाम कहो।" नगर में यह समाचार बिजली सा फैलगया। श्री गौराङ्ग यह समाचार सुनतेही अपने भक्तों समेत वहां आ

पहुँचे और श्री नित्यानन्द के मस्तक से रुधिर निकलते देख क्रोध में आगए परन्तु श्री नित्यानन्द ने हाथ जोड़कर कहा कि आप क्रोध न करें और इन दो जीवों का उद्धार करें। श्री गौराङ्ग ने उत्तर दिया कि जब आपका इनलोगों पर इतना प्रेम है तो इनलोगों का उद्धार होगया। एक तो श्री गौराङ्ग का गौर वर्ण और उसपर क्रोध में आपका मुख और भी लाल सूर्य्य के समान चमकने लगा। श्री गौराङ्ग का मुख देखते ही जगाई और मधाई पानी हो गए और श्री नित्यानन्द के पैर पर गिरपड़े। ये लोग अपने पापों को स्मरण कर क्षमा माँगने और रोने लगे। फिर क्या था ये लोग पूरे भक्त होगए। अपना सब काम छोड़कर भगवान का भजन और वैष्णवों की सेवा करने लगे।

पंडित लोगों ने जब देखा कि जगाई और मधाई भी श्री गौराङ्ग के वश में होगए तो काज़ी के पास गए। क़ाज़ी ने नगर में आकर कई एक भक्तों के घर पर जाकर खोल और करताल को तोड़ डाला ओर उनलोगों को कीर्तन करने से रोका। श्री गौराङ्ग ने जब यह सुना तो आपने भक्तों को यह आज्ञा दी "अभी तक हमलोग घर के भीतर कीर्त्तन करते थे परन्तु आज से हम नगरकीर्त्तन करेंगे। तुमलोग अपने अपने दल समेत आते जाओ।" नगरवासिओं को कीर्त्तन देखने की बड़ी इच्छा थी परन्तु घर के भीतर होने से नहीं देख सकते थे। आज श्रीगौराङ्ग को राजमार्ग में कीर्त्तन करते देखकर सब बड़े प्रसन्न हुए और कीर्त्तन में आ मिले। श्री गौराङ्ग कीर्त्तन करते करते काज़ी के घर की ओर चले। काज़ी ने इन लोगों को आते देख अपने सैनिकों को भेजा परन्तु सैनिक लोग श्री गौराङ्ग का मधुर नृत्य और कीर्त्तन देखकर मोहित होगए और अपना अपना शस्त्र फेंककर स्वतः कीर्तन करने

लगे। श्री गौराङ्ग काजी के द्वार पर जाकर कीर्त्तन करने लगे। भक्त लोग भी उसके घरके चारोंओर कीर्तन करने लगे। काज़ी मारे डर के आपके पैर पर गिरपड़ा और हरिनाम लेने लगा। उस दिन से फिर कोई बाधा न रही।

पंडित लोगों ने इतने पर भी हरिनाम नहीं ग्रहण किया और कुछ न कुछ षड़्यंत्र रचते ही रहे। श्रीगौराङ्ग ने देखा कि हमारा ऐश्वर्य्य और सम्मान देखकर ये लोग ईर्षा करते है इसीसे हरिनाम नहीं लेते। हमको भी समग्र भारत में हरिनाम प्रचार करना है केवल नदिया ही में रहने से काम नहीं होगा। यह सोचकर आपने सन्यास लेने का निश्चय कर लिया। आपने अपना यह विचार अपनी माता, स्त्री और भक्तों से कहकर और उनकी सम्मति लेकर माघ के महीने में आधीरात के समय सबको सोता छोड़ कटोया में जाकर श्रीकेशवभारती से सन्यास ले लिआ। सन्यास लेने के बाद आप माता की आज्ञा से जगदीश चले गए। उड़ीसा उस समय एक स्वतंत्र राज्य था और मुसलमानों ने अभी तक उसको नहीं जीता था। महाराज प्रतापरुद्र वहांके राजा थे। नवद्वीप से सार्वभौम भट्टाचार्य को महाराज प्रतापरुद्र ने बुलाकर अपने यहां रखा था। यह जगदीश में रहते थे। श्रीगौराङ्ग जगदीश का दर्शन कर मारे प्रेम के विह्वल हो उठे और मूर्छित होकर मंदिर में गिर पड़े। सार्वभौम जो संयोग से वहां उपस्थित थे, आपके शरीर में रोमाञ्च पुलक आदि सब सात्विक भावों का उदय देख बड़े विस्मित हुए और बड़े यत्न से आपको अपने घर उठा लाए। श्रीगौराङ्ग के साथी लोगभी पीछे से आए और आपको घेर कर कीर्त्तन करने लगे। थोड़ी देर बाद आप चैतन्य हुए। सार्वभौम ने जब आपका सब

समाचार सुना तो आपसे बोले "भाई, तुम देखने में इतने सुन्दर और बुद्धिमान मालूम पड़ते हो परन्तु तुमने सन्यास क्यों लिया। तुमसे सन्यास कैसे निबह सकता है।"

आपने हाथ जोड़ कर कहा "कृपाकर हमको ऐसा उपदेश दीजए जिसमें मेरा धर्म रहै"। सार्वभौम ने आपकी प्रार्थना स्वीकार करली और आपको वेदांत का उपदेश सात दिन तक देते रहे। आठवें दिन उन्होंने आपसे पूछो "तुम चुपचाप मेरी व्याख्या सुनते हो कुछ बोलते नहीं। हमारी व्याख्या कुछ समझते हो या नही"। आपने उत्तर दिया "मैं वेदों के सूत्रों को तो भलीभाँति समझता हूं परन्तु आपकी उलटी पुलटी व्याख्या नहीं समझता"। सार्वभौम यह उत्तर सुनकर स्तंभित होगए और बोले कि तुम्ही इस की ठीक व्याख्या करो। आपने एक एक सूत्रों को लेकर सगुण भक्ति की स्थापना की। सार्वभौम आपकी व्याख्या को नहीं काटसके और उनके हृदय में भक्ति का अंकुर उदय होने लगा। श्रीगौराङ्ग ने व्याख्या करते करते सार्वभौम को अपनी षड्भुज मूर्त्ति का दर्शन दिया। दर्शन करते ही वह आपके पैर पर गिर पड़े और एक अच्छे उच्चकोटि के भक्त हो गए।

जगदीश में कुछ दिन ठहर कर और वहां के वासियों को हरिनाम देकर कृतार्थ कर आप दक्षिण चले गए। भक्तों के अनुरोध से आप केवल कृष्णदास को अपने साथ लेगए। मार्ग में जाती समय आपने एक पथिक को देखकर गले लगा लिया और कृष्ण कृष्ण कहने की आज्ञा दी। वह आपका रूप और मधुर वाणी सुनकर मोहित हो गया और मारे आनन्द के पागल होकर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' कहते हुए आपके साथ चलने लगा। कुछ दूर

जाकर आपने उसको फिर गले से लगाकर भक्ति देकर विदा किया। उस मनुष्य ने गांव में जाकर गांव के गांव को वैष्णव बना दिया और आप सदा नामकीर्त्तन में विभोर रहा करता था। श्रीगौराङ्ग जहां जहां गए वहां वहां आपने ऐसा ही किया। श्रीगौराङ्ग ने दक्षिण में अद्भुत शक्ति दिखलाई। * इसी प्रकार आपने समग्र दक्षिण में वैष्णव धर्म नाम-कीर्त्तन का प्रचार किया। जिसके यहां आप भोजन करते उसको भक्त बना देते और उसको नाम-कीर्त्तन के प्रचार करने की आज्ञा देते।

विद्यानगर में गोदावरी के किनारे आप से श्रीराय रामानन्द से भेंट हुई। आप ने यहां दस दिन ठहर कर श्रीराय रामानन्द से वैष्णव धर्म के गूढ तत्वों पर विचार किया। रामानन्द जी एक उच्चकोटि के भक्त थे। श्रीगौराङ्ग इसी भांति सहस्रों तीर्थों में स्नान और दर्शन करते और लोगों को भक्त बनाते श्रीरङ्ग जी में पहुँचे। मार्ग में आप से शास्त्रार्थ करने के लिए एक बौद्ध आचार्य्य आया और बुद्ध के नवों सिद्धान्तों पर व्याख्या करने लगा। आपने उसके नवों सिद्धान्तों को तर्क द्वारा छिन्न भिन्न कर उसको परास्त कर वैष्णव बना दिया। श्रीरङ्गजी में आप श्रीवेंकट भट्ट के यहां रहे। भट्टजी के बहुत आग्रह करने पर आपने चातुर्मास वहीं बिताया। आपने सकुटुंब भट्टजी को कृष्णभक्त बनादिआ। यहां से आप मदूरा होते हुए रामेश्वर

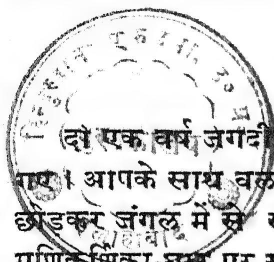
---

* The power He had not manifested at Navadwip, He now put forth for the salvation of the South.

(J. N. Sarkar's Chaitanya)

को गए। रामेश्वर से आप कन्या कुमारी होते हुए मदूरा लौट आए। मार्ग में सब तीर्थों का दर्शन करते हुए आप मदूरा से पंढरपुर गए और वहाँ से पञ्चवटी होते हुए विद्या-नगर लौट आए। यहां श्रीरायरामानन्द से भेंट कर आप जगदीश पधारे। आप दक्षिण से ब्रह्मसंहिता और कृष्ण-कर्णामृत दो ग्रंथ ले आए और भक्तों को उपहार स्वरूप दे दिया।

यह समाचार जब चारों ओर फैल गया कि श्रीगौराङ्ग अब जगदीश में रहेंगे तो चारों ओर से भक्त लोग वहाँ आने लगे और वहीं रहने लगे। श्रीनवद्वीप-वासी आपके लौट आने का समाचार सुन बड़े प्रसन्न हुए और रथ-यात्रा निकट देखकर सबलोग परामर्श कर श्री अद्वैताचार्य्य के साथ जगदीश आए। येलोग नवद्वीप से प्रत्येक वर्ष आने लगे और चार महीना श्रीगौराङ्ग के साथ रहकर विजयदशमी पर नवद्वीप लौट जाते। श्रीगौराङ्ग अपने प्रिय भक्तों को पाकर बड़े प्रसन्न होते और उन लोगों के साथ आनन्द से हरिकीर्त्तन करते। रथयात्रा के पहिले श्रीगौराङ्ग अपने भक्तों समेत श्रीजगदीश का मंदिर अपने हाथ से मार्जन करते। जो जितना अधिक कतवार फेंकता उसको उतना अधिक प्रसाद मिलता। आप अपने हाथ से जल लाकर मंदिर धोते थे। रथयात्रा के समय आप रथ के आगे उद्दंड नृत्य और कीर्तन करते। कभी कभी रथ के रुक जाने पर आप अकेले ही रथ को खींच लेते। रथयात्रा का महोत्सव देखते देखते श्रीगौराङ्ग मारे आनन्द के विभोर होजाते और कभी कभी मूर्छित हो जाते। रथयात्रा के बाद जब गौड़ीय वैष्णव लोग नवद्वीप जाने लगे तो आपने श्रीनित्यानन्द को और भक्तों के साथ हरिनाम-प्राचारार्थ गौड़ देश में भेजा।



दो एक वर्ष जगदीशमें रहकर श्री गौराङ्ग श्री वृन्दाबन को गए। आपके साथ बलभद्र आचार्य गए थे। आप राजमार्ग छोड़कर जंगल में से सीधे काशी आए। काशी में आप मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर विश्वेश्वर और विन्दु-माधव का दर्शन कर तपन मिश्र के यहां ठहरे। दस दिन काशी में ठहर कर आप प्रयाग होते हुए मथुरा को चले गए। आप इस यात्रा में भी लोगों को उसी प्रकार भक्त बनाते गए जिस प्रकार आपने दक्षिण यात्रा में लोगों को भक्त बनाया था। श्री वृन्दावन में पहुंचकर आपके आनन्द की सीमा न रही। आप मारे आनन्द के सदा नृत्य और कीर्तन किया करते और बार बार मूर्छित हो जाते। जहां जहां आप जाते आप के पहिले ही यह समाचार फैल जाता कि आप आ रहे हैं। श्री वृन्दावन में लोग आपको घेरे रहते थे। आपने यहां के सब तीर्थों की यात्रा की और कितने तीर्थ जो लुप्त होगए थे उसका आपने उद्धार किया। श्री राधाकुंड का पता किसी को नहीं था, आप घूमते घूमते एक धान के खेत में कूद पड़े और श्रीराधाकुंड की स्तुति करने लगे। पीछे से जब भक्तों ने उसको खोदवाया तो नीचे से कुंड निकला और उसके चारों ओर कितने तीर्थ मिले। वहां के लोगों को कृतार्थ कर आप प्रयाग लौट आए। श्रीरूप प्रयाग में आकर आपसे मिले। आपने यहां दसदिन ठहर कर श्रीरूप को वैष्णव-सिद्धान्त की शिक्षा दी। वहां से आप काशी आए।

काशी में आप चन्द्रशेखर के यहां ठहरे। यहां श्री सनातन आपसे मिले और आपने दो महीने काशीमें ठहर उनको वैष्णव-धर्म की शिक्षा और ग्रंथ बनाकर पश्चिम में वैष्णवधर्म प्रचार करने की आज्ञा दी। आप काशी में दो मास रहे परन्तु आपने सन्यासिओं से नहीं भेंट की इससे वे लोग आपकी निन्दा करने

लगे कि वह हमलोगों का सामना नहीं कर सकते। भक्तों को यह निंदा अच्छी नहीं लगी और उन लोगों ने आपका सामना कराना चाहा। एक दक्षिणी ब्राह्मणने एक दिन संन्यासियों का भण्डारा किया और सब संन्यासियों को बोलाया। श्रीगौराङ्ग से भी आकर बहुत विनती की तब भक्तों के अनुरोध से आपने जाना स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन आप दो एक भक्तों के साथ प्रसन्न वदन "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण" कहते उस सभामंडप में जहाँ सहस्रों संन्यासियों के बीच प्रकाशानन्द विराज रहे थे जा पहुँचे। आपके पहुंचते ही वहां खलबली पड़गई और सब लोग आपका अद्भुत रूप देखने लगे। आपने हाथ जोड़कर सबको नमस्कार किया और पैर धोकर उसी स्थान पर जहां सब लोग पैर धोते थे बैठ गए। आपको देखकर प्रकाशानन्द अपना सब क्रोध भूल गए और उठ खड़े हुए। उनके उठते ही सबलोग खड़े हो गए। उन्होंने आपसे कहा "श्रीपाद! आप अपवित्र स्थान में क्यों बैठे हैं यहाँ आइए।" आपने कहा "हम आप लोगों के बराबर नहीं बैठ सकते"। यह सुन प्रकाशानन्द आप के पास चले आए और आपका हाथ पकड़ ले जाकर बीच सभा में बैठाया और बोले "आप सन्यासी होकर हमलोगों के योग्य कर्म न कर क्यों धर्म-विरुद्ध नृत्य और गीत करते है।" आपने कहा "हम अपना वृतान्त आदि से कहते हैं, सुनिए। हमने जब गुरूजी का आश्रय लियो तब उन्होंने कहा कि तुम मूर्ख हो, वेद नहीं पढ़ सक्ते, किन्तु वेद से भी बढ़कर एक वस्तु हम तुमको देते हैं तुम इसको याद कर लो। यह कह कर उन्होंने यह श्लोक पढ़ा—

हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा॥

तब गुरुदेव ने कहा कि कलिकाल में नाम व्यतीत गति नहीं है अत एव तुम कृष्ण नाम जपो। हम गुरु जी की आज्ञानुसार नाम जपने लगे, जपते जपते हम पागल हो गए। कभी हँसने, कभी गाने और कभी नाचने लगे। तब हमने सोचा कि यह क्या हुआ। हम गुरुजी के पास गए और अपना सब वृतान्त उन से कहा। उन्होंने कहा कि तुम डरते क्यों हो, तुम्हारा मंत्र सिद्ध हो गया और कृष्ण-प्रेम तुमको मिल गया। यह कह गुरुजीने श्रीमद्भागवत का यह श्लोक पढ़ा—

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागोद्रुतचित्तउच्चैः।
हसत्यथो रोदति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः॥

अर्थ—इस प्रकार जो अनुरागपूर्वक उच्चस्वर से अपना प्रिय श्रीकृष्ण नाम लेते हुए पागल से हँसते, रोते, गाते और नाचते हैं वे संसार से अलग रहकर सब का मंगल करते हैं।

श्रीगौराङ्ग ने इस प्रकार सन्यासियों के सब प्रश्नों का उत्तर दे उनको परास्त कर सबको वैष्णव बना दिया। बंगाल के राजा सुबुद्धिराय जिनको हुसेनशाह ने अपना छुआ पानी पिला दिया था और पंडितों ने जिनको तप्त घी पीकर प्राण दे देने की आज्ञा दी थी काशी में आपकी शरण आए। आपने कहा "तुम वृन्दावन जाकर श्रीकृष्ण का भजन करो, तुम्हारा सब पाप दूर हो जायगा और तुम एक भक्त हो जाओगे"। काशी में श्रीगौरांग जहां रहते थे वह महल्ला "चैत्यन्य-वट"के नाम से विख्यात है। काशी से आप जंगल के मार्ग से जगदीश चले गए और फिर कहीं नहीं गए। जगदीश में आप एक आसन अट्ठारह वर्ष रहे और भक्तों के साथ सदा नामकीर्त्तन किया करते। जो एक लाख हरिनाम नित्य जपता आप उसी के यहां भिक्षा करते थे। दिन दिन आपकी बिरहावस्था बढ़ने लगी और आप दिन दिन भर मूर्छित पड़े रहते थे। भक्तों के मुख

से लीला–कथा सुनकर कुछ शांत होते परन्तु फिर वही "हा ! कृष्ण, हा ! कृष्ण कहाँ हो, दर्शन दो" कह कर व्याकुल हो उठते और छटपटा कर मूर्छित हो जाते। श्रीकृष्ण–भजन किस प्रकार किया जाता है यह जगत को दिखलाने के लिए ही आपने यह लीला की।

भूत लगे, मदिरा पिए सब काहू सुधि होइ।
प्रेम सुधारस जिन पियो तिहि न रहै सुधि कोइ॥

इस प्रकार भजन करने की शिक्षा देकर और चारों ओर भारत में सहस्रों भक्तों को नाम प्रचारार्थ भेजकर आप अड़तालीस वर्ष इस भारतभूमि को पवित्रकर नित्यधाम को चले गए।

८ शिक्षाष्टक

यह आठ श्लोक श्रीगौराङ्ग ने समय समय पर भक्तों से कहे थे। श्रीरूप गोस्वामी ने "पद्यावली" ग्रन्थ में इनका संग्रह किया है। वैष्णव धर्म का मूलतत्व समझकर अनुवाद सहित यहां दे दिया गया है। श्रीकृष्ण संकीर्त्तन की सर्वोत्कृष्टता दिखलाते हुए आपने कहा है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिका वितरणं विद्यावधू जीवनं॥
आनन्दांबुधिवर्द्धनं प्रतिपदंपूर्णामृतस्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनं॥१॥

अर्थ—चित्तरूपी दर्पण को शुद्ध करने वाला, संसार–रूपी महादावाग्नि को बुझानेवाला, कल्याण–रूपी कुमुद को प्रकाशित करने वाला चन्द्रतुल्य, विद्यारूपी वधू का जीवन, आनन्द के सागर को बढ़ानेवाला, पद पद में पूर्ण अमृत का स्वाद देने वाला और अन्तःकरण के ताप को दूर करने वाला ऐसा जो सर्वोत्कृष्ट श्रीकृष्ण–संकीर्तन है उसकी जै हो, जै हो, जै हो॥ १॥

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति
स्तत्रार्पितानियमितः स्मरणेन कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहा जनिनानुरागः ॥ २ ॥

अर्थ—हे भगवन्! आपने यद्यपि इतनी कृपा की है कि आपने अपने नाम बहुत प्रकार के बनाए है, उनमें अपनी सब शक्ति अर्पित करदी है और नाम–स्मरण करने में कोई विशेष नियम वा समय का प्रतिबंध भी नहीं रखा है तब भी हम लोग ऐसे अभागे हैं कि नाम में रुचि नहीं होती। २।

नामकीर्तन के अधिकारी का स्वरूप–

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदाहरिः ॥ ३ ॥

अर्थ—तृण से भी अधिक नम्र, वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु और निरभिमान होकर दूसरों का मान करने वाला पुरुष ही हरिकीर्त्तन करने योग्य है ॥ ३ ॥

भगवद्भक्त को क्या वस्तु चाहिये सो आप कहते हैं

न धनं न जनं न सुंदरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥४॥

हे जगदीश! मैं न धन, न जन, और न सुन्दरी कविता कुछ भी नहीं चाहता। जन्म जन्मान्तर में केवल आप में हमारी निष्काम भक्ति हो ॥ ४ ॥

भगवान से प्राथना करते हैं—

अयि नन्दतनूज किङ्करम्पतितम्माम्विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया निज पाद–पङ्कजस्थितधूली सदृशं विभावय ॥ ५ ॥

हे नन्दनन्दन! विषम भवसमुद्र में पड़े हुए अपने इस किङ्कर को कृपाकर अपने चरणारविन्द की धूलि के समान समझो ॥ ५ ॥

प्रेमावस्था का वर्णन—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धयागरा ।
पुलकैर्निचितंवपुः कदातव नाम ग्रहण भविष्यति ॥६॥

हे कृष्ण ! आपका नाम लेती समय कब मेरे नयनों से अश्रुधारा बहेगी, गद्गद् मुखसे बचन न निकलेगा और शरीर में रोमाञ्च हो जायगा ॥ ६ ॥

भगवान के विरह में भक्त की अवस्था का वर्णन—

युगायितं निमेषेण चक्षुषाप्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥ ७ ॥

श्रीगोविन्द के विरह में मेरा एक पल एक युग के समान बीतता है, मेरे नेत्र वर्षा के समान अविरत जल धारा बहा रहे हैं और सब जगत मेरे लिए शून्य हो रहा है ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण-प्रति गोपी-वाक्य—

आश्लिष्य वा पादरतांपिनष्टु मामदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लंपटो मत्प्राणनाथस्तु सएवनापरः॥८॥

हम आपकी चरणानुरागिनी हैं । ओप चाहे हमको आलिङ्गन कर सुख दीजिए अथवा दर्शन न देकर कठिन मर्म यंत्रणा दीजिए जो इच्छा हो वह करिए परन्तु आपही मेरे प्राणनाथ हैं और दूसरा कोई नहीं ॥ ८ ॥

९ कथा वस्तु

नाटक की मुख्य घटनाएँ इस प्रकार से हैं । प्रथम अंक-(१) निमाई पंडित का विद्यार्थियों से शास्त्रार्थ और विनोद करना (२) गयाजी से लौट आने पर निमाई का शांत और हरिभक्त हो जाना (३) निमाई की भक्ति देखकर माता का डरना और निमाई का घड़ी घड़ी मूर्छित होना । द्वितीय अंक-(४) भक्तों की वृद्धि और पंडितों का विरोध करना (५) नगर कीर्त्तन और धर्म-द्वेषियों का भक्त होना (६) निमाई का

सन्यास लेने का विचार और सब से आज्ञा लेना। तृतीय अंक–(७) आधी रात को निमाई का सब को सोता छोड़ घर त्याग कर चले जाना। चौथा अंक–(८) भक्तों का निमाई की खोज में जाना और निमाई को सन्यास लेने के बाद पुनः शान्तिपुर लौटा लाना। पंचम अंक–(९) माता की अनुमति से निमाई का जगन्नाथजी में रहना (१०) श्रीचैतन्य का श्रीनित्यानन्द को गौड़देश हरिनाम प्रचारार्थ भेजना (११) श्रीनित्यानन्द का गौड़ देश जाकर हरिनाम प्रचार करना (१२) श्रीचैतन्य का श्रीनवद्वीप जाना और माता को अन्तिम दर्शन देकर श्री विष्णु—प्रियाजी को अपना खंड़ाऊँ अवलम्बन स्वरूप प्रदान करना।

इस नाटक में श्रीचैतन्य के सन्यास लेने का वर्णन मुख्य है परन्तु ग्रंथकार ने पात्रों के मुख से आपकी बाललीला तथा अन्यान्य चरित्र कहलाए हैं जिससे श्रीचैतन्य के विषय में पाठकों को बहुत कुछ ज्ञात हो जाता है। श्रीचैतन्य जीवों के दुःख से कितने दुःखित थे और जीवों का दुःख दूर करने के लिए उन्होंने अपने सब सुखों को लात मारकर आजन्म कष्ट उठाया यह इस नाटक में भलीभाँति वर्णित है। श्रीगौराङ्ग ने मुख से कम कहा परन्तु अपने कार्य्यों द्वारा विशेष कर दिखाया है *। श्रीकृष्ण–भजन किस प्रकार करना चाहिए यह आप ही ने जगत को दिखलाया है। इस नाटक में यह दृश्य अच्छी तरह दिखलाया गया है।

१० श्रीशिशिरकुमार घोष का जीवनचरित्र

सं० १८४२ ई० में यशोहर ज़िला के अन्तर्गत मागुरा ग्राम में

* He taught little by precept but most by example.

(Lord Gauranga)

स्वर्गीय श्रीशिशिर कुमार घोष का जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम हरिचरण घोष और माता का नाम अमृतमयी था। आप पाँच भाई थे–वसन्तकुमार, हेमन्तकुमार, शिशिरकुमार, मोतीलाल और गोपाल। शिशिर बाबू ने अपने गाँव में एक बाजार बसाया जिसका नाम अपनी माता के नाम पर अमृत बाजार रखा। पीछे से इस गांव का नाम भी अमृत बाजार हो गया। आप बड़े विद्याव्यसनी और सरल प्रकृति के थे। अङ्गरेजी के आप पूर्ण पंडित थे। देश के प्रति प्रेम आप में पूर्णरूप से था और प्रत्येक देशहित के कार्य में आप पूर्ण रूप से मदद देते थे। सत्रह वर्ष की अवस्था में जब आपके जिलेमें नील के कर लेने वालों से पीड़ित प्रजा ने विद्रोह किया तब आपने प्रजा का पक्ष लेकर "हिन्दू पेट्रिएट" और "मिरर" आदि अंगरेजी पत्रों में बड़े बड़े लेख लिखे थे जिसका सरकार पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। पत्रों का प्रभाव देखकर आपने अपने बाजार से एक साप्ताहिक बंगला पत्र निकालना प्रारम्भ किया और उसका नाम "अमृतबाजार पत्रिका" रखा। उस समय एक ग्राम से पत्र निकालना बहुत कठिन कार्य था परन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ शिशिर बाबू सब आपत्तिओं को झेलकर भी पत्र निकालते रहे। आपका पत्र शीघ्र ही लोक-प्रिय हो गया। एक वर्ष बाद आप कलकत्ते चले आए और यहीं से पत्र निकालने लगे। इसके ग्राहक बहुत हो गए और लोग इस को बड़े चाव से पढ़ने लगे।

सन् १८७९ में नए प्रेस ऐक्ट द्वारा जब भाषा के पत्रों का मुख बन्द कर दिया गया तब आप बड़े विपद में पड़े। परन्तु कर्म्मवीर शिशिर बाबू ने बड़ी दृढ़ता दिखलाई और रात भर में आप ने पत्र को बङ्गला से अङ्गरेजी में कर दिया। पाठक लोग पत्रिका का कायापलट देखकर चकित होगए। सुप्रसिद्ध

अङ्गरेजी पत्र "अमृत बाजार पत्रिका" तभी से निकलने लगा। उस समय के छोटे लाट सर रिचार्ड टेम्पल आपकी पत्रिका को पढ़कर बड़े प्रसन्न हुए और आपको भेंट करने के लिये बुलाया। आप 'श्रीविष्णु-प्रिया' नामक एक बङ्गला, और 'स्पिरीटुयल मैगज़ीन' नामक एक अंगरेज़ी मासिक पत्रिका भी प्रकाशित करते थे। अपने पत्र में आप बराबर प्रजा का पक्ष लेते और कई देशी रियासतों को भी आपने घोर संकट से बचाया था। वर्तमान नव शिक्षित समाज के अनुसार आप पहिले नास्तिक थे। आपके बड़े भाई हेमन्तकुमार बड़े भक्त थे। उनके संग से आप की भी बुद्धि धीरे धीरे बदलने लगी और श्रीगौराङ्ग चरित्र पढ़कर आप ऐसे भूले कि आप एक पूरे वैष्णव होगए। बड़े भाई के सहवास से आपका शुष्कज्ञान दूर हो गया और आप भक्त हो गए।

शिशिर बाबू का चरित्र बड़ा पवित्र और निर्मल था। आपने अंगरेज़ी में लॉर्ड गौराङ्ग नामक एक पुस्तक छ सै पन्ने की लिखी है। बंगला में भी आपने बहुत से ग्रंथ लिखे हैं। श्री अमिय-निमाई चरित में आपने श्रीगौराङ्ग की जीवनी दो सहस्त्र पृष्ठों में लिखी है। आपने भजन भी बहुत अच्छे बनाए हैं और गाना भी अच्छा जानते थे। बड़े बड़े अंगरेज आप को कीर्त्तन के साथ नाचते और गाते देख दंग रह जाते थे। आप ७५ वर्ष देश की सेवा कर भगवन्नाम कीर्त्तन सुनते सुनते परमधाम को सिधारे। आपके ही कारण अंगरेज़ों को श्रीगौराङ्ग चरित्र मालूम हुआ और नवशिक्षित वंग समाज में वैष्णव-धर्म का प्रचार हुआ।

"श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम राधेगोविन्द॥"



नाटक के पात्रगण।

पुरुष-पात्र

निमाई—वैष्णव-धर्म के प्रवर्तक। श्रीगौराङ्ग, श्रीकृष्ण-चैतन्य और प्रभु आदि नाम द्वारा संबोधित और नाटक के नायक।

श्रीनित्यानन्द—हरिनाम प्रचार में निमाई के प्रधान सहायक।

श्रीअद्वैताचार्य्य—वयोवृद्ध प्रधान वैष्णव।

श्रीकेशव भारती—श्रीचैतन्य के गुरु।

नीलमणि, न्यायरत्न, विद्यावागीश-नवद्वीप के पंडित।

श्रीवास—एक भक्त, श्रीगौराङ्ग के पड़ोसी।

मुकुन्द, गदाधर, श्रीधर—श्रीगौराङ्ग के सखा।

ईशान—श्रीगौराङ्ग का सेवक।

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, हरिदास, चन्द्रशेखर, वासुदेव घोष-श्रीगौराङ्ग के भक्त।

हरिदास—नापित जिसने श्रीगौराङ्ग का मुंडन किया।

स्त्री पात्र

शचीदेवी—श्रीगौराङ्ग की माता।

श्रीविष्णुप्रियाजी—श्रीगौराङ्ग की सहधर्मिणी।

मालिनी—श्रीवास की स्त्री और शचीदेवी की सखी।

काञ्चना—श्रीविष्णुप्रियाजी की सखी।

अन्यपात्र-गण

जुलाहा, तमोली, विद्यार्थी, नागरिक आदि।

निमाई-सन्यास नाटक

प्रथम अंक

१. गर्भांक

[स्थान—निमाई पंडित की पाठशाला के सामने का मार्ग]

(विद्यार्थियों का आना)

प्रथम विद्यार्थी—भाई ! अपने गुरु जी की कम अवस्था के कारण लोग हम लोगों का उपहास करते हैं पर इस नवद्वीप में उनकी जोड़ का कौन पंडित है ? जब दिग्विजयी काश्मीरी पंडित आये थे तब बड़े बड़े पंडित नादिया छोड़ कर भाग गए। उस समय अपने ही बाल गुरु ने नादिया की मान रक्षा की थी। "गुरु गुड़ ही रह गए और चेला चीनी हो गए"।

द्वितीय विद्यार्थी—भाई ! एक विचित्रता और है। हम लोगों के गुरु अत्यन्त चंचल होने पर भी जब पढ़ाने बैठते हैं तब भला किसका साहस पड़ता है जो उनके सामने चूं कर सके ! देखिये गुरु जी आ गए।

(निमाई पंडित का प्रवेश, विद्यार्थियों का नमस्कार करना)

निमाई—भाई ! चलो बाज़ार चलें । आज बहुत सा सौदा खरीदना है ।

प्र० विद्यार्थी—पैसा तो लाये न हैं ?

निमाई—घर पर तो कौड़ी भी नहीं है ।

प्र० वि०—तो फिर क्या उधार लीजिएगा ?

निमाई—उधार नहीं लेते । उधार लेना अधर्म समझते हैं । यदि बिना दिए ही मर गए तो हमें चिर-ऋणी होना पड़ेगा ।

द्वि०वि०—पैसा है नहीं और उधार भी न लीजियेगा तब आप सौदा किस प्रकार पाइएगा ?

निमाई—अरे भाई ! पैसा नहीं भी ले चलते तो क्या हुआ एक बोझ आशीर्वाद तो लिए चलते हैं । देखें इस आशीर्वाद के बदले में भी कुछ मिलता है ।

(हँसना और नेपथ्य की ओर देखकर)

वह कौन जाता है ? मुकुन्द तो नहीं है ? देखो, उसकी चाल तो देखो । हमसे छिपकर और कपड़े से मुँह ढाँक कर भागा जाता है कि कहीं हमारे हाथ न पड़ जाय । बतला सकते हो कि वह अपने को 'चट गाँव का बंगाली' कह कर हमें देख क्यों भागा है ?

प्र० वि०—मालूम पड़ता है कि उसे कोई विशेष काम है ।

निमाई—यह नहीं । वह वैष्णव और कृष्ण-भक्त है और हम पाषण्डी हैं । हमारे संग वार्तालाप करने से उसकी



भक्ति में कमी पड़ जायगी इसी लिए वह भागता है। (ऊँचे स्वर से) अरे मुकुन्द ! भागते क्यों हो ? इधर आओ, डरोमत, हम तुमको न छूएगें।

(मुकुन्द का प्रवेश और प्रणाम)

भोजन भयल मुकुन्द। "अधभर गगरी छलकत जाय"।" हम तोहरे देस गयल रहली।

मुकुन्द—गयल रहली। यह तो नगर की बोली नहीं है।

निमाई--उस बात को रहने दो। मुकुन्द ! भला तुम हमको देखकर भागे क्यो ? यही न कि तुम वैष्णव और हम पाषण्डी। क्यों, इसी कारण हमारे पास आते तुमको डर लगता है कि कहीं तुम्हारा धर्म नष्ट न हो जाय ? किंतु देखो हम तुमसे एक बात कहे रखते हैं कि हम भी एक दिन वैष्णव होंगे पर तुम्हारे ऐसे भण्ड वैष्णव नहीं। हम ऐसे वैष्णव होगें कि ब्रह्मा और शिव तक हमारे द्वार पर आवेंगे तब तुम ठीक समझना। उस समय तुम्हीं हमारे पीछे पीछे छाया की तरह घूमा करोगे।

(गदाधर का प्रवेश)

यह लो गदाधर भी आ गए। आइए, आइए। कल का विचार पूरा भी नहीं होने पाया था कि तुम भाग गए। अब आज तुमको हम नहीं छोड़ेंगे (हाथ पकड़ना) तुम हमारे कल के उस प्रश्न का उत्तर दो।

गदाधर--हम आपके पैर पड़ते हैं, हमारा हाथ छोड़ दीजिए। हमको एक बहुत ही आवश्यक कार्य है, हमें शीघ्रही जाना है।

निमाई—अच्छा, अच्छा। हमारे प्रश्न का उत्तर देकर शीघ्र चले जाओ।

गदाधर—हम बार बार पाँव पड़ते हैं हमारा हाथ छोड़ दीजिए। हम क्या आप के संग तर्क कर सकते हैं? आप बड़े कठिन हो। हम तो तुमको गुरु के समान मानते हैं, बड़े भाई सा आदर करते हैं पर तुम हमको देखतेही छेड़ छाड़ करने लगते हो।

निमाई--यह सब रहने दो। हम बिना उत्तर पाए भला तुम्हें छोड़ेगें।

गदाधर--हम तुमसे जोर नहीं कर सकते। हमारा हाथ छोड़ दो (हाथ खींचना) तुम हमको देखतेही क्यों इतनी छेड़ छाड़ करने लगते हो।

(रोना)

निमाई--(हाथ छोड़कर) छिः गदाधर। तुम निरे बच्चे हो-हैं रोने लगे? अच्छा इस समय तर्क रहने दो, चलो बाज़ार चलें।

(श्रीवास का प्रवेश)

श्रीवास--अजी, उद्धत-शिरोमणि! कहाँ चले?

निमाई--(नमस्कार करके) कहिए, कहिए।



श्रीवास—निमाई ! मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते ?

निमाई—हम मन में एक धातु का रूप सोच रहे थे इससे अन्यमनस्क होने के कारण आपको नहीं देख सके, क्षमा कीजिए ।

श्रीवास—तुम्हारे परलोकवासी पिता हमारे परम मित्र थे । और तुम भी हमें बहुत प्रिय हो । हम तुम्हें गोदी में लेकर घूमते रहे । हम को इस बात का बड़ा गौरव है कि इस समय नदिया में तुम सब से बड़े पंडित हो । किंतु विचार करो, कि तुम जो विद्या-चर्चा करते हो और दिनरात उसमें माथा खपाते हो इससे तुम्हें क्या लाभ है ? श्रीकृष्ण के चरण कमल की प्राप्ति ही मनुष्य का परम पुरुषार्थ है । इस कोरी विद्या-चर्चा से क्या तुमको भगवच्चरण की प्राप्ति होगी ? जिस प्रकार विद्या-चर्चा करते हो उसी प्रकार श्रीकृष्ण का स्मरण करो । तुम्हारे समान विद्वान का क्या इस प्रकार जीवन व्यतीत करना उचित है ! हम लोगों का वैष्णव-दल दुर्बल है । यदि तुम उसमें योग दो तो हम लोगों की वृद्धि सौगुनी हो जायगी ।

निमाई—(शिर नवाकर) पंडित जी ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है पर छोटी अवस्था होने के कारण अभी कीर्ति प्राप्त करने की बड़ी इच्छा है । इसी कारण मन श्रीकृष्ण की ओर नहीं लगता । केवल यही इच्छा रहती है

कि शास्त्रार्थ कर सबको परास्त करूँ । आप और कुछ दिन ठहर जाइये और जब इस प्रकार विजय प्राप्त करते करते शास्त्रार्थ की इच्छा का क्रम से नाश हो जायगा तब हम चार भक्तों का संग कर ऐसे भक्त होंगे (कपड़े से मुँह बन्द कर हँसी रोकना) कि ब्रह्मा शिव पर्यन्त हमारे द्वार पर आवेंगे ।

('हा हा' करके हँसना, श्रीवास आदि सब का हँसना)

श्रीवास—–अच्छे मनुष्य को सदुपदेश देने आए । भला निमाई ! तुम भगवान को मानते हो ?

निमाई—–शास्त्र कहता है कि "सोऽहं" । जो वह है वही हम हैं । जब हम वही हैं तब किसको मानें ? अपने को ? हम भी तो परमेश्वर हैं ।

श्रीवास—–हम जाते हैं । हमने तुमसे हार मानी । हम सदा यही प्रार्थना करते हैं कि श्रीकृष्ण में तुम्हारी भक्ति हो ।

निमाई—–वह तो अवश्य होगा । आप का आशीर्वाद कभी विफल नहीं हो सकता ।

(श्रीवास का प्रस्थान)

चलो भाई बज़ार चलें ।

(सबका प्रस्थान)

२—गर्भांक

[स्थान—बाज़ार]

(विद्यार्थियों के साथ निमाई पंडित का प्रवेश)

तमोली—महाशय ! इधर आइए, क्या लगा पान न लीजिएगा ?

निमाई—भाई ! कोई दे तो क्यों नहीं लेंगे । पर हमारे पास पैसा नहीं है ।

तमोली—(आपही आप) पैसा नहीं । क्या भया, ब्राह्मण से पैसा लेना भी उचित नहीं । (प्रकट) महाराज पान ले लीजिए हम पैसा नहीं चाहते ।

निमाई—हम बिना मूल्य के तुमसे पान कैसे लें ?

तमोली—नहीं, यह नहीं हो सकता । आप को लेना ही पड़ेगा ।

निमाई—पैसा दिये बिना पान कैसे लें ?

तमोली—आप पूछते हैं कि कैसे लें ? आप को पान देने की हमारी ऐसी इच्छा है कि यदि आप नहीं लेंगे तो हम आत्महत्या कर लेंगे ।

प्र० वि०—अरे, यह क्या ?

निमाई—अच्छा लाओ दे दो । क्या करें तुम्हारे प्राण देने से हमारा पान ले लेना अधिक सहज है ।

द्वि० वि०—पैसा भी न लगा और आशीर्वाद भी नहीं देना पड़ा ।

निमाई—हां जी ! पान तो योंही मिल गया ।

(आगे बढ़ना)

जुलाहा—महाशय हमारे दूकान पर भी आइये । देखिए शान्तिपुर की कैसी अच्छी अच्छी साड़ी और धोतियां हैं

निमाई—(दूकान पर जाकर) देखें, तुम्हारे पास कैसी साड़ी है । (देखना) यह साड़ी हमको पसन्द है । कहो इसका मूल्य क्या है ? और हाँ ! मूल्य पूछ करही क्या करेंगे ? पास में पैसा भी नहीं है ।

जुलाहा—तो क्या हुआ कुछ चिन्ता नहीं उधार ही ले लीजिए ।

निमाई— उधार ! उधार करके क्या करेंगे ?

जुलाहा--मूल्य भी नहीं है और उधार भी नहीं करेंगे तब साड़ी किस प्रकार लेंगे ।

निमाई—वही तो, तब भला साड़ी और कैसे ले सकते हैं ? परन्तु साड़ी अच्छी है ।

जुलाहा—महाशय आप साड़ी ले जाइए एक वर्ष में मूल्य दे दीजिएगा ।

निमाई—यह भी तो उधार ही हुआ ।

जुलाहा—महाशय आपका पैर छूकर कहते हैं कि आप से एक कौड़ी मुनाफा नहीं लेते । हमारी केवल लागत मात्र दे दीजिए ।

निमाई—हमने तो पहिले ही कह दिया कि हमारे पास एक कौड़ी भी नहीं है । भाई, हमको क्षमा करो, हम जाते हैं ।

जुलाहा—अच्छा चलिए, हम साड़ी आप के घर पर ले चलते हैं हमको वहीं दाम दे दीजिएगा ।

निमाई—घर पर यदि पैसा होता तो क्या बाज़ार खाली हाथ आते ?

जुलाहा—तब तो हम बड़े विपद् में पड़े । अच्छा आप साड़ी ले जाइये इच्छा हो तो मूल्य दे दीजियेगा नहीं तो नहीं ।

निमाई—यह भी तो एक प्रकार का उधार ही हुआ ।

जुलाहा—हम तो बड़े फेर में पड़ गए । चारों ओर हमें अंधकार ही दिखलाई पड़ता है ।

प्र० वि—अरे दूकानदार ! तुम्हें इसमें क्या विपत्ति है । पंडित जी यदि साड़ी नहीं लेते तो किसी दूसरे के हाथ बेंच देना । अंधकार दिखलाई देने का क्या कारण ?

जुलाहा—क्या हमारे मन की बात सुनोगे ? हम व्यवसायी हैं, बिना मूल्य के किसी को प्राण निकलने पर भी नहीं दे सकते पर पंडित जी न जाने क्या मंत्र जानते हैं कि उनको वस्त्र बिना दिए जी नहीं मानता ।

[निमाई की ओर देखकर]

महाराज आप साड़ी उसी तरह से ले लीजिए । हम और कुछ नहीं चाहते, आप केवल हमें आशीर्वाद देदीजिए ।

प्र० वि—पहिले की तरह इस बार काम नहीं चलेगा । देखते हैं कुछ आशीर्वाद देना पड़ेगा ।

(विद्यार्थी का साड़ी लेना, जुलाहा का प्रणाम करना)

निमाई —(जुलाहा से) तुम्हारा मंगल हो (विद्यार्थियों से)

चलो श्रीधर के यहां चलें यदि वहां कृतकार्य्य हुए तब अपने को जयी समझेंगे ।

(श्रीधर की दूकान पर जाना)

कहिए श्रीधर अच्छे तो हैं ।

श्रीधर—(खड़े होकर) पंडित जी अच्छे भी नहीं और बुरे भी नहीं हैं । आपका पैर पड़ते हैं, हम दरिद्र हैं फिर भी ब्राह्मण हैं, हमारे संग ठिठोली मत करो ।

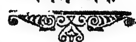
निमाई—(विद्यार्थियों से) श्रीधर महाशय को देखते हौ । यह हमारे यजमान हैं । यह हमको केला का पत्ता, फूल और फल देते हैं । यह बड़े कृपण हैं पर धन-पात्र हैं, रहते तो कुटी में हैं पर कुटी धन से परिपूर्ण है ।

श्रीधर—क्या हमारे पास धन है ? हमारे पास यदि धन होता तो क्या ब्राह्मण के कुल में जन्म ले कर फल बेंचते ?

निमाई—एक दोष यह और है कि तुम वस्तु का मूल्य दूना लेते हौ ।

श्रीधर—अच्छा ! यदि हम दूना मूल्य लेते हैं तो फिर आप हमारे दूकान पर आतेही क्यों हैं ?

निमाई—(विद्यार्थियों से) यह श्रीधर परम भक्त और बड़े सत्यवादी हैं इसीलिए इनसे हँसी करने की किसकी इच्छा नहीं होती ? (श्रीधर के प्रति) हम दूसरे दूकान पर क्यों जाय ? क्या यजमानों को छोड़ दें ? भला श्रीधर तुम जो लाभ करते हौ उसका आधा गंगाजी को



देते हो। न हो तो कुछ हमको भी दिया करो। हमारा भी कुछ अधिकार तुम्हारे ऊपर है। तुम जिस गंगा को आधा देते हो, हम उसके पिता हैं।

श्रीधर—(कान पर हाथ रखकर) राम! राम! तुमको गंगा जी का भी कुछ डर नहीं है। आदमी जितना बड़ा होता है उतनाही शान्त होता है पर तुम्हारी चंचलता बढ़ती ही जाती है।

निमाई—जो हो, तुम्हारे पास गड़ा धन बहुत है। क्या यह झूठ है?

श्रीधर—पंडित जी! आप की दोहाई हमारे संग ठट्ठा मत करिए हम आपको फूल फल और पत्ता बिना मूल्य दिए देते हैं।

निमाई—तब हुज्जत काहे की। तुम्हारी जो निन्दा की थी उसको लौटा लेते है। सब कोइ सुनते जाओ कि श्रीधर कृपण नहीं है, उस के पास धन भी नहीं है और अधिक मूल्य भी नहीं लेता। किंतु श्रीधर! तुम मन में सोचलो कि हमको केला का फूल फल बिना मूल्य ही देना पड़ेगा। (विद्यार्थियों से) इस बार भी आशार्वाद नहीं लगा केवल धमकी से काम चल गया।

(सब का प्रस्थान)



३. गर्भांक

[स्थान--शची का अंतः पुर]

(मालिन और शची)

शची—तुमको मालूम न है कि विजया दशमी पर निमाई गया जी गए थे। पितृकार्य के लिए जाते थे इसलिए रोक भी नहीं सकी। निमाई को अत्यन्त चंचल जानकर उनके मौसा चन्द्रशेखर आचार्यरत्न साथ गए थे। उनके निज के कई विद्यार्थी भी साथ गए थे। चार महीने पर आज सब कोई लौटे हैं।

मालिन—निमाई के कुशलपूर्वक लौट आने पर नदिया में कई स्थानों पर आनन्द-उत्सव हो रहा है। केवल तुम्हीं अन्यमनस्क हो। हमको क्यों बुलाया है, क्या हुआ है ? तुमने रो रो कर क्यों आँखें फुला रखी है ?

शची—बहिन ! यही कहने के लिये तो तुमको बुलाया है। पहले बराबर आठ लड़कियाँ हुई पर सब जाती रहीं, उसके अनन्तर विश्वरूप हुए। विश्वरूप के जन्म के दश वर्ष बाद निमाई हुए। विश्वरूप रूप और गुण में एकही था पर वह सोलहवें वर्ष में सन्यासी होकर नमालूम कहाँ चला गया। फिर तबसे उसको नहीं देखा। (रोना)

मालिन—चुप रहो, निमाई को देखकर शांत हो। जिसको

ऐसा पुत्र हो उसे फिर दुःख काहे का ? निमाई की माता जगत में धन्य है।

शची—सुनो बहिन ! स्वामी तो वैकुण्ठ पधारे । निमाई का ही मुँह देखकर हम अभी तक अपने प्राण को रखे हुई हैं। उसके अनंतर निमाई का विवाह भी किया और वह दिग्विजयी पंडित भी हो गया । एक प्रकार से मैं सुखी थी । हमारी बहू भी साक्षात् लक्ष्मी है। किंतु हमें शंका है कि निमाई अपने बड़े भाई की तरह संसार छोड़ कर चला जायगा। हमें समझ पड़ता है कि वह अब घर पर नहीं रहेगा ।

मालिन—बहिन, तुम्हारी अवस्था बहत्तर वर्ष की हुई होगी। इसीसे तुम्हारी बुद्धि भ्रांत हो गई है । निमाई क्या अब संसार छोड़ेगा ? घर पर रूपवती स्त्री है और स्वयं वह विद्या का रसिक है। विश्वरूप के समान धर्म की ओर उसका विशेष झुकाव भी नहीं है ।

शची—बहिन ! अब निमाई का वह सब भाव नहीं है। उसका जो भाव आज हमने देखा उससे मेरा प्राण सूख गया। निमाई गयाजी से एक नई वस्तु बनकर आया है।

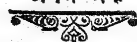
मालिन—निमाई का आर क्या भाव है ? सर्वदा हँसते हैं। सबके संग हँसी ठट्टा करते हैं । पौड़ना उनको इतना प्रिय है कि बिना चार बार गंगा पार किए वे नहीं

रहते। निमाई धीरे चलना जानते ही नहीं। जब चलेंगे तब दौड़कर ही चलेंगे। क्या ऐसे निमाई सन्यासी होंगे?

शची--बहिन! निमाई गयाजी में यह सब भाव छोड़ आए। अब वह एक नया मनुष्य हो गया है।

मालिन—बहिन! निमाई के बारे में उनके एक शिष्य ने कविता बनाई है। क्या तुमने उसको सुना है? हमको स्मरण है, कहती हैं सुनो—

सरल प्रकृति सिसु मतिहुपै, सुरगुरु-सम विद्वान।
सुगठित अंग सुवर्ण सों, तीछन बुद्धि सज्ञान॥
चन्द्रबदन, बोलनि मधुर, कमल नयन रिझवार।
बहत प्रेम-जल सोइ मम, श्री गौरांग उदार॥
चारि हस्त अरु अर्द्ध अहै परिमान अंग को।
रूप देखि सब भ्रमैं देव-सिसु अहै कौन को?॥
अल्प बयस जय कियो जगतबिजयी कहलायो।
सोई है प्रिय सखा हमारो अति मन भायो॥
सखो संग खेलत सदा, गंग तरंग मँझार।
नगर माँहि बिचरत कबहुँ, चपलन को सरदार॥
नौका चढ़ि दौड़ावहीं, खेलहिं अति चित लाय।
सोइ चंचलता गौर की, हरो-मोर मन आय॥
गुननिधान, सुमधुर प्रकृति, रूप-पयोधि अपार।
सच्चरित्र अरु सीलनिधि, संतोषी सुविचार॥
देखि बड़े को नमतु है, सब कर सम सनमान।
कहँ लौ बरनौ गौर-गुन, कीन्हेउ पागल प्रान॥
मन निर्मल सीतल सदा, मुख पै मृदु मुसकान।
स्नेह सहित चितवत सबै, आनंद के सुनिधान॥



कमल नयन सों बहत जल, बोलनि मन हर लेइ।
ऐसो श्री गौरांग प्रभु, सरन आपनी देइ॥

इसके अतिरिक्त निमाई चाहे जितने चंचल हों उनका हृदय स्नेह और दया से परिपूर्ण है । वह तुमको इस वृद्धावस्था में छोड़ जायँ ऐसा कभी नहीं हो सकता ।

शची—बहिन ! निमाई चार महीने पर घर आए थे, आनन्द से विह्वल होकर मैं दौड़ी हुई बाहर गई । जाकर देखा कि अन्यमनस्क खड़े हैं, पहिले तो हमको पाहिचाना ही नहीं । जब गले लगाया तब मानो निद्रा भंग हुई और स्थिरचित्त होकर प्रणाम किया । बात चीत करने लगे तो आँख में जल भर आया और मन के आवेग के कारण कुछ नहीं कह सके । नदिया के और लोग उनसे भेंट करने आए थे पर उनलोंगो से भी वही भाव । दीन से भी दीन की तरह सबका पैर पकड़ते हैं और कृष्ण का नाम मालूम पड़ता है कि सर्वदा जपते रहते हैं ।

मालिन—आँय ! ऐसे क्यों हो गए ?

शची—निमाई का यह भाव देखकर हमने उनके मौसा और साथियों से इसका कारण पूछा । उन लोगों ने जो हाल कहा उसको सुनकर हमारा हृदय काँप उठा । बहिन ! क्या तुमने ईश्वरपुरी का नाम सुना है ? उनके समान भक्त पृथ्वी पर कोई नहीं है । उन लोगों ने कहा कि इन्हीं ईश्वरपुरी ने निमाई को गयाजी में

मंत्र दिया था । ईश्वरपुरी ने जैसे ही मंत्र दिया कि निमाई तुरन्त विह्वल हो उठे । उसी समय से निमाई के मुख से केवल कृष्ण नाम निकलता है और भली प्रकार इन्हें अपना अब ज्ञान भी नहीं है ।

मालिनी—तो बहिन ! क्यों डरती हो आप की बहू दो दिन में उन्हें यह सब भुला देगी । कृष्ण नाम का जप तो अच्छा है । तुम व्यर्थ मत डरो, हम घर जाती हैं ।

(मालिनी का प्रस्थान)

शची—समय बहुत बीत गया । घर का सब काम जल्दी कर लेना होगा । बहू विष्णुप्रिया ! कहाँ हो, इधर आओ । (विष्णुप्रिया का प्रवेश) बहू, निमाई चार महीने पर बाहर से आए हैं । जल्दी से भोजन तैयार कर दो और ऐसा प्रबन्ध करो जिससे वे जल्दी सो सकें । टीका चोटी कर लो, नई चादर उतार लो ।

४—गर्भांक

[स्थान—निमाई का शयन—गृह]

(हाथ पर मुख रखे हुए निमाई शैया पर बैठे हैं और श्री विष्णुप्रिया का हाथ में माला और चन्दन की कटोरी लिए हुए प्रवेश)

विष्णुप्रिया—क्या अभी तक बैठे ही हैं, क्या सोचते हैं (कुछ ठहर कर) यह क्या, आप की आँख में जल क्यों है ? आप क्या रोते हैं ! क्यों रोते हैं ? अरे, यह रोदन ! चार महीने पर तो आप घर आए और हमको देखकर रोने लगे। कुछ कहिए, कुछ कहिये ! क्या हुआ है ! हमने क्या अपराध किया है ! अरे इनको तो ज्ञान ही नहीं है। यह क्या हुआ, मां को बुला लावें।

(जल्दी से प्रस्थान और शची के साथ फिर से प्रवेश)

शची—निमाई ! तुम क्यों रोते हो ? ए निमाई ! निमाई ! कुछ बोलो, क्या हुआ है ? देखो, निमाई की कैसी दशा हो गई है। उसके अश्रु जल से बिछौना भींग गया है। (माथे पर हाथ रखकर) बेटा ! तुम रोते क्यों हो ? निमाई ! निमाई ! हमारे सिर की सौगंध कहो क्यों रोते हो ? (धीरे धीरे सिर हिलाना)

विष्णुप्रिया—मां ! मालूम पड़ता है कि मूर्छा आ गई है।

शची—आँख पर जल का छींटा दो। (जल से छींटा मारना) निमाई तुम क्यों रोते हो ?

निमाई—(कुछ चैतन्य होकर) मां, हम, हम हम ! मां ! तुम क्या कहती हो ?

शची--कहते क्या है अपना सिर ! चार महीने पर घर आए। नदिया के सब लोग प्रसन्न हैं पर तुम रोते हो। तुम्हारे मन में किस बात का दुःख है । तुमको क्या कमी है ? तुम अध्यापकों के शिरोमणि और लोक-पूज्य हो। तुम रोते क्यों हो ?

निमाई--हम क्या रोते हैं ! क्यों मां, हमतो बड़े आनन्द में हैं।

शची--खूब आनन्द में हो ! जब से तुम घर में आए हो तभी से अनमने हो। आँख का जल दूर करना चाहते हो पर नहीं कर सकते हो। हमसे सब ठीक ठीक कथा क्यों नहीं कहते । बहू घर में आई है यह देखो, चन्दन और फूलकी माला उसी तरह पड़ी है और तुम रोते हो।

निमाई--मां ! तुम मत घबड़ाओ । तुम हमारे आँख में जल देखकर दुःखित होती हो इससे हमारे मन को बड़ा दुःख हुआ किन्तु ये दुःख के अश्रु नहीं है आनन्द के हैं।

शची—आनन्द के अश्रु, क्यों न कहोगे।

निमाई—मां, हम सोए हुए थे। सोते हुए हमने एक अत्यन्त शुभ स्वप्न देखा। मां सुनना हो तो सुनो। हमने

स्वप्न में एक कृष्ण वर्ण के युवा पुरुष को देखा। अहा, उसका रूप जगत को प्रकाशित करता था, जिसके अंग अंग से सुन्दरता टपकती थी और गले में बनमाला थी। वे मेर पास आए और उन्होंने मेरी ओर देखा। उनके दोनों नेत्र कमल के समान थे। वे नयन क्या थे मानो प्रेम के सरोवर थे। हमारी ओर देखकर उन्होंने हमारा हृदय छीन लिया। वही मेरे प्रान, मेरे प्रान, मेरे—

(लुड़क पड़ना)

शची—बहू विष्णुप्रिया, शीघ्र निमाई को पकड़ो। देखो हमारा निमाई किस तरह पड़ा हुआ है। नेत्र स्थिर हैं, पलक गिरते नहीं, क्या निमाई हम लोगों को छोड़ कर चले गए? निमाई! निमाई! बोलो। ईशान! ईशान! भीतर आओ! देखो निमाई कैसे पड़े हुए हैं।

(ईशान का प्रवेश)

ईशान—क्या मां, क्या हुआ!

शची—भाई! अपने स्वप्न का हाल कहते कहते निमाई इस तरह गिर पड़े हैं। यह देखो आँख की पुतली स्थिर है, पलक हिलती नहीं।

ईशान—मां! डरती क्यों हो भैया की तो प्रायः ऐसी अवस्था हो ही जाती है। गया जी से लौटती समय मार्ग में ऐसा कई बार हो चुका है। हमने अच्छी तरह देखा

है। धैर्य धरिए। देखिए सांस चलती है। कुछ डर नहीं है।

(आँख पर जल मारना, नाम लेकर पुकारना और कान में कृष्ण कृष्ण कहना)

निमाई—(हरि हरि कहकर उठना और चारों ओर देखना) मां ! क्या कहते रहे। हाँ स्मरण आया। वह मेरे प्राण के भी प्राण हैं। उनकी एकही प्रेम भरी चितवन से हम अपने को भूल गए। मां उसके बाद उन्होंने जो किया वह हम कह नहीं सकते। उन्होंने हमको पकड़ कर गले से लगा लिया। उस दृढ़ आलिंगन से हमारे समस्त शरीर में मानों बिजली सी दौड़ गयी। माँ वह इस समय कहां गए ? उनको बिना देखे हम नहीं बच सकते। हमको यदि जीवित रखना चाहती हो तो उनको खोजकर ले आओ। (ऊपर देखकर) आह ! आप कौन हो जो मेरे चित्त को चुराकर अंतर्ध्यान हो गए ?

(फिर से मूर्छा और शची का घबड़ाना)

ईशान—गया जी से फिरती बार इसी तरह प्रभु कई बार मूर्छित हुए थे। कुछ डर नहीं, अभी अच्छे होते हैं। कृष्ण नाम ही इनकी औषधि है। अहा, चन्द्र वदन मलीन हो रहा है।

भयौ मलिन अति चंद्रमुख बहत नैन सों नीर।
नीरव रोदन नमित मुख उठत प्रेम की पीर॥

इति प्रथम अंक



द्वितीय अंक



१—गर्भांक

[स्थान-गंगा तीर, श्री नवद्वीप का बारकोना घाट]

(न्यायरत्न और विद्यावागीश तीर पर बैठे हैं)

न्याय०—हाँ वह कौन है ? नीलमणि तो नहीं हैं ।

(तर्कवागीश नीलमणि का प्रवेश)

कहिए नीलमणि, कब आए ?

नील०—आज ही प्रभात को ।

न्याय०—क्या पाठ समाप्त हो गया ?

नील०—हां ! एक प्रकार से, पर अभी कुछ बाकी रह गया है । वहाँ और नहीं ठहर सका इसीलिये शीघ्र ही देश लौट आया ।

विद्या०—भला नीलमणि, तुम देश छोड़कर मिथिला क्यों पढ़ने गए ? अब तो न्याय पढ़ने के लिये यहाँ नदिया ही में कोई बाधा नहीं है वरन सुविधा ही है । वासुदेव सार्वभौम की कृपा से हम लोगों का यह दुःख दूर हो गया । तिरहुत के नैयायिक पंडित लोग गौड़ीय छात्रों को शिक्षा देते तो अवश्य हैं किन्तु पाठ समाप्त

होने पर पाठ्य ग्रन्थों को साथ नहीं लाने देते । यदि कोई चोरी से लाने का प्रयत्न भी करता है तो उससे बलात् छीन लेते हैं। परन्तु कुशाग्र बुद्धि सार्वभौम ने समग्र न्याय-ग्रन्थों को कंठस्थ कर यहाँ आकर नवद्वीप में पाठशाला ही स्थापन कर दी है । इस अमानुषिक और अद्भुत स्मरण शक्ति द्वारा सार्वभौम ने नवद्वीप का दुःख दूर कर दिया और उसकी मान रक्षा भी की।

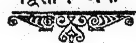
नील०—यद्यपि अब आपलोगों को न्याय के ग्रन्थ मिल गए हैं तथापि अभी तक अच्छे अध्यापक नहीं मिले। न्याय शास्त्र का केन्द्र तिरहुत है। यहाँ एक वासुदेव सार्वभौम ही थे सो उनको तो उत्कल के सम्राट् प्रतापरुद्र ने वृत्ति देकर अपने यहाँ रख लिया है । अब नवद्वीप में कौन अच्छा अध्यापक है ?

न्याय०—क्यों काणभट्ट ! सार्वभौम के नदिया छोड़कर जाने पर काणभट्ट ने देखो वहीं पाठशाला खोली है और वे सार्वभौम से किसी अंश में कम नहीं हैं। कुछ लोग तो उन्हींको अच्छा नैयायिक समझते हैं।

नील०—कौन काणभट्ट ?

न्याय०—क्या, दीधिति के ग्रंथकर्त्ता रघुनाथ का नाम नहीं सुना है ?

नील०—सुना है, और किसने नहीं सुना है। पर मैं तो



लड़कपन से ही मिथिला में था। यह सोचा था कि वहीं पाठ समाप्त करूँगा पर जब हमने वहां यह सुना कि नवद्वीप में एक अद्भुत घटना घटी है तब तुरंत यहाँ चला आया।

न्याय०—कैसी अद्भुत घटना?

नील०—क्यों, यह तो कथा सारे जगत में व्याप्त हो रही है कि नवद्वीप में श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं।

न्याय०—(हँसना) श्रीकृष्ण प्रकट होंगे, यह कथा किस शास्त्र में लिखी है? कुछ धूर्तों ने निमाई पंडित को भगवान भगवान कहकर प्रसिद्ध कर दिया है। निमाई भला आदमी है, बुद्धि का भी तीव्र और कुछ पंडित भी हो गया है किन्तु दरिद्र हो का न सन्तान है, भगवान का पद मिलने तथा दूध घी खाने से उसका मस्तिष्क बिगड़ गया है।

नील०—हमने आप का आशय नहीं समझा। यदि निमाई पंडित को भगवान ही बनने की इच्छा होती तो जनता उनको वह पद ही क्यों देती। उलटे यदि कोई भगवान बनना भी चाहे, तो क्या जनता उसको पददलित न कर देगी? अवश्य, बहुत लोगों ने उनको भगवान का पद दिया है और यदि लोग न मानते तो संसार में इतना शोर क्यों मचता? कहाँ हम तिरहुत में थे और वहाँ यह संवाद पहुँच गया।

विद्या०--भाई बात तो ठीक कहते हो। निमाई पंडित असीम शक्तिशाली हैं। एक तो देखने ही में ऐसे सुन्दर हैं कि मालूम पड़ता है त्रिलोक में ऐसा कोई सुन्दर नहीं है तिसपर नवीन यौवनावस्था। पांडित्य की सीमा नहीं। उनकी भक्ति भावना देखकर प्रह्लाद तो क्या शुकदेव जी भी तुच्छ प्रतीत होते हैं। इतने गुण जिस पुरुष में हों उनको लोग यदि भगवान ही कहकर पूजा करें तो क्या आश्चर्य ?

न्याय०--क्या तुम भी निमाई पंडित के दल के तो नहीं हो ? तुम्हारी बातचीत से तो ऐसाही प्रतीत होता है।

विद्या०--निमाई पंडित की अवज्ञा मत करिए। पहले उनकी शक्ति तो देखिए। अभी केवल लड़के हैं और अवस्था कुल तेइस वर्ष की है। इतने ही समय में वह किस पद पर पहुँच गए हैं उसका भी कुछ विचार कीजिए। जब दिग्विजयी केशव काश्मारी आए तब आचार्य लोग भय से घर के वाहर तक नहीं निकलते थे, तब इन्हीं बालगुरु के निकट वे परास्त हुए थे। इसी नादिया नगर में निमाई ने अठ्ठारह वर्ष की अवस्था में पाठशाला खोली थी जैसा किसीने नहीं किया था और उनके यहाँ जितने विद्यार्थी हैं उतने हम समझते हैं कि कहीं दूसरे के यहाँ नहीं हैं ! नदिया में सहस्त्रों पाठशालाएँ होने पर भी उनके यहाँ विद्यार्थियों की भरमार

क्यों रहती है ? बुद्धिमंतखाँ एक प्रकार से नदिया के राजा हैं जिनके अधीन सहस्रों अध्यापक हैं । वही बुद्धिमंतखाँ निमाई पंडित को भगवान मानकर पूजा करते हैं । नदिया के कोतवाल जगन्नाथ और माधव, जिनको लोग जगाई और मधाई कहते हैं इस नगर में जो चाहते थे करते थे । ब्राह्मण-कुमार होकर भी गोवध, ब्राह्मणवध, मनुष्यवध, स्त्रीवध और मद्यपान आदि करते थे । ऐसा कोई कुकर्म न था जो वे नहीं करते रहते थे । लोग कहते थे कि उनके समान पापी जगत में न हुआ है और न होगा । निमाई पंडित ने उनको निष्पाप कर दिया और अब अपने किए पर वे लोग ऐसा रोते हैं कि देखनेवाले का हृदय फट जाता है । वे लोग दरिद्र से भी दरिद्र वेश में प्रत्येक प्राणी का पैर पकड़ पकड़ कर क्षमा माँगते हैं । इस नगर के राज-प्रतिनिधि चाँद क़ाज़ी गौड़ के बादशाह के नाती हैं । वे अपनी पठान सेना लेकर निमाई पंडित और उनके भक्तों का शासन करने के लिए गए थे किंतु परिणाम क्या हुआ ? बादशाह के वही नाती अब रात दिन कृष्ण कृष्ण जपा करते हैं और निमाई पंडित के चरणों में शिर नवाते हैं । ऐसे व्यक्ति को सामान्य मनुष्य किस प्रकार कहा जा सकता है ?

न्याय०—रहने दो अपने पंडित को । उनका नाम सुनते

ही हमारे नख शिख पर्यन्त आग लग जाती है । उसने तो मारा देश चौपट कर डाला । कहता है "चाण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठः कृष्णभक्तिपरायणः" । ब्राह्मण का अपमान करना और तेली—तमोली जोलाहे आदि नीच जातियों का मान बढ़ाने के लिए ही उसका जन्म हुआ है । उसके धर्म का प्रचार होने पर ब्राह्मण लोगों की मान मर्यादा कुछ भी नहीं रह जायगी । और करता क्या है? उसके भक्त गण "कृष्ण कृष्ण" कहकर व्यर्थ चीत्कार किया करते हैं । उसका क्या फल होगा जानते हो ? श्रीभगवान जो हृदय में सोए हैं वे इस प्रकार चिल्ला कर जगाए जाने से क्रुद्ध होंगे, उनके क्रोध करने ही से देश में अन्न न पैदा होगा और सब कोई अन्न बिना भूखे मर जायगें ।

नील०—इसी लिये क्या आप निमाई पंडित पर क्रोध करते हैं ? उनका धर्म-प्रचार होने से नीच वर्ण के लोगों की वृद्धि होगी, इसी कारण से क्या आप उनसे द्वेष करते हैं ? इस नवद्वीप में उनके विपक्षी लोग भी हैं, यह मुझे नहीं मालूम था ।

न्याय०—क्या कुछ थोड़े हैं ? हम लोग सब कोई विपक्षी हैं । ब्राह्मण पंडितों में अधिकतर उनके विरुद्ध हैं । इसीलिए हमी सब लोग मिलकर क़ाज़ी के पास नालिश करने गए थे कि वे उस अकाल कूष्माण्ड का शासन

करें। क़ाज़ी ने भी बड़े उत्साह के साथ उनके भक्तों के खोल को तोड़ना, उन्हें मारना इत्यादि कई प्रकार से शासन करना प्रारंभ कर दिया था। किन्तु एक दिन निमाई ने नगर-संकीर्तन का ढोंग रचा। फिर क्या, उनके साथ लाखों आदमी आ मिले। बस निमाई उस दल-बल को लिए हुए क़ाज़ी के घर जा धमका। तब लाचार होकर डर के मारे काज़ी ने उस समय उनको भगवान मान लिया। फिर तो उस समय से निमाई का प्रभाव और भी बढ़गया।

नील०—ऐसे ही कर्मों से हमारा देश चौपट हुआ है। माना कि अपने हिन्दू लोगों में झगड़ा था तब उसके निपटाने के लिए विधर्मियों के पास जाते क्या आपको कुछ घृणा नहीं मालूम हुई?

न्याय०—निमाई पंडित को कौन हिन्दू कहता है? जो चिल्ला चिल्ला कर कृष्ण का नाम ले वह क्या हिन्दू है? श्रीवास पंडित के घर की ऊँची दीवार के आड़ में द्वार बंद कर आँगन में चिल्लाहट मचाते हैं और कहते हैं कि कीर्तन करते हैं। किन्तु यह सब झूठ। वहाँ पर जो जो करते हैं उसको मुख से कहते भी पाप होगा। मद्य लाते हैं, वेश्या को बुलाते हैं और छिः छिः कहाँ तक कहें, महाशय बस, अब हम लोगों का इस नगर में रहना भी कठिन हो गया है। रातदिन खोल करताल

कूटना, हरिध्वनि, और "कृष्ण कृष्ण" का चीत्कार ! इसको क्या भद्र लोग सहन कर सकते है ? जगाई मधाई में यह एक विशेष गुण था कि वे हरि नाम नहीं सहन कर सकते थे । उनको भी न मालूम किस मंत्र के बल से वश में कर लिया है । अब उन लोगों को कौन रोक सकता है ? देखते हैं कि अब हम लोगों को नगर अवश्य हीं छोड़ना पड़ेगा । लो सुनो, दुष्ट लोग इधर ही आते हैं ।

(दूर से कीर्तन की ध्वनि)

नील०—अच्छा, अच्छा, देखें तो कीर्तन कैसे होता है और निमाई के भक्त लोग भी कैसे हैं ?

(श्रीधर, मुकुन्द, गदाधर आदि का नाचते और गाते हुए प्रवेश)

गीत

बंदौं चरनकमल हरि गौर ।
दुखो धर्म छायो अँधार अरु सूझत कहूँ न ठौर ॥
देखि दसा दीनन की करिकै दया दानि–सिरमौर ।
नदिया चन्द्र समान उदित ह्वै हरयो ताप–तम गौर ।
पतितन प्रेम, अभै दुखियन को दियो मेटि दुख रौर ।
सब मिलिकै अब बोलहु जय जय महाप्रभो श्रीगौर ॥

नील०—देखो तो, देखो तो, यह लोग मारे आनन्द के कैसे फूले नहीं समाते । इन लोगों को इतना आनन्द कहाँ से मिला । इतना आनन्द जो औरों को दे सकता

है वही आनन्दमय है। अतः निमाई पण्डित आनन्द-मय हैं। कहो भाई तुम लोग कौन हो !

मुकुन्द—अच्छा, क्या हम लोगों का वृत्तान्त सुनियेगा ! हम लोग अपनी कथा गीत में ही कहते हैं और गीत गा गाकर ही हम अपना परिचय भी देते हैं, सुनो।

परिचय देहिं हम सब लोग।
कृष्णहिं खोजत हम सब विरमहिं छाँड़ि जगत को भोग॥
जमुना कूल प्रेम चंदन घसि देखहु तिलक लगाय।
अङ्ग अङ्ग लिखि नाम कृष्ण को फिरैं चहूँ दिसि गाय॥
रोअत हँसत नटत अरु गावत घूमत रह्यो न भान।
लोग कहत पागल भे ये सब हमहुँ न दीन्ह्यो कान॥
गूँथि गूँथि फूलन की माला निज अङ्गन पहिराय।
प्रम नदी सँग नित प्रति हम सब जात बहे बरियाय॥

नील०—तुम लोग तो एक बारही उन्मत्त हो गए हो। कहो भाई यह अवस्था आप लोगों की कैसे हुई।

प्रेम को पन्थ दिखावन को प्रभु गौर ने जन्म लियो जगआइकै।
गाइकै नाचिकै बाँधिकै नूपुर मोहि लियो सबहीन रिझाइकै॥
नहिं देख्यो कहूँ अस सुंदर रूप रह्यो भुव चंद्र प्रभा जहँ छाइकै।
दिन द्वैक को नाहिं सबै दिनको सुख भोगि रहे हम खूब अघाइकै॥

नील०—भाई ! तुम लोगों ने यह आनन्द कहाँ पाया ? क्या तुम कृष्ण से मिल चुके हो या तुम लोगों ने कृष्ण को देखा है ? बतलाइए, हम पैर पड़ते हैं। हम

मिथिला से यही देखने, सुनने और जानने के लिए आए हैं।

मुकुन्द—(नाचते नाचते)

खिल्यो अब प्रीति रीति को फूल ।
भयो अंग सब निर्मल जब हम न्हाए जमुनाकूल ॥
तब दरसन दीन्ह्यो करुनाकर स्याम होइ अनुकूल ।
अविरल बहत नीर नैनन सों रहे अपुनपौ भूल ॥
'छाँडि हमें कबलौं रावहुगे बिरह अगिन हिय हूल ।'
कह्यो, सुनत तब हिए हमारे उठ्यो कठिन अति सूल ॥
स्याम हमारे प्रान सर्ब धन अरु हैं जीवन-मूल ।
सौंपि शरीर तिनहिं हम अबतौ रटत स्याम सब भूल ॥

नील०—तुम लोगों का आनन्द देखकर मेरी यह क्या दशा होती जा रही है ? हम भी क्या उसी तरङ्ग में तो नहीं पड़ गए ?

न्याय०—कहो श्रीधर ! तुमने क्या इस समय फूल पत्ता बेंचना छोड़ दिया है ?

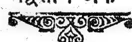
श्रीधर—क्यों न छोड़ें ? इस समय मैंने आश्रय पाया है और प्राण पाया है । हमने अपना मनोनीत मनुष्य पाया है और अपनी निधि पाई है। क्या नाचें न ? देखो नाचते हैं।

(नृत्य)

न्याय०—मनोनीत मनुष्य वही निमाई पण्डित है न ?

मुकुन्द—हां ! हां ! वही जीवन के भी जीवन हैं ।

(नेपथ्य मे "चले आओ तुम सब शीघ्र आओ")



[शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी का प्रवेश]

शुक्ला—(अध्यापकोंसे) आप लोग यहाँ बैठे हुए क्या कर रहे हैं ? (गदाधर आदि को देखकर) ओहो ! यह हमारे प्रियगण हैं । (मुकुन्द, गदाधर और श्रीधर से गले मिलना) कैसा आनन्द !

मु० ग० श्री०—कैसा आनन्द !

शुक्ला०—(अध्यापकों के प्रति) आप लोग बैठे हैं । चलिए, चलें प्रभु को देख आवें । अपने शास्त्र को गङ्गा में फेंकदो ।

न्याय०—ब्रह्मचारी तुम तो तपस्वी ब्राह्मण हो, तुम्हारी यह क्या दशा है ?

शुक्ला—पुरजन सुनहु सुख संबाद ।

शची आँगन नंद-नंदन करत क्रीड़ा, बाद ॥
साँचही जौ तँह बिराजत देखिहैं तब बदन ।
नाचि गाइ रिझाइ हम सब चूमिहैं श्री चरन ॥
छाँड़िहैं संसार कारज फँसैं इन महँ नाहिं ।
जीव कों दुःख होत कत इत पूछिहैं प्रभु पाहिं ॥
देखु मनहिं बिचारि कैसो आचरजहु लखात ।
मनहु कोटिन विश्वनायक आजु तनहिं समात ॥
मुखहिं सों 'हरि हरि' निरंतर कहत कत सुख होइ ।
भयो आनँद सों मनहु मन ताप भय नहिं कोइ ॥

हम बाल ब्रह्मचारी हैं । हमने पृथ्वी के सभी तीर्थों का दर्शन किया है परन्तु उसको कहीं नहीं पाया और

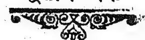
न मन को शांति तक मिली ! कुछ दिन बाद यह शुभ संवाद सुना कि हम आज पर्यन्त जिसको ढूँढ़ते फिर रहे थे वह स्वयं यहीं नदिया में प्रगट हुआ है। तब यहाँ आकर उसका दर्शन किया और साथही अपना प्राण भी उन पर निछावर कर दिया। अब तक यहीं जानते थे कि हम लोग अत्यन्त तुच्छ कीटानुकीट के समान है कि जिसे भाग्यरूपी वायु चाहे जहाँ उड़ा लेजा सकता है। अब प्रतीत हो गया कि ऐसा नहीं है। इस समय हम अपने को एक राजा की सन्तान समझते हैं, राजराजेश्वर की संतान मानते हैं तथा अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक की सन्तान समझते हैं। हम लोगों के पिता ऐसे पुत्रवत्सल हैं कि अपने मूर्ख और निरुपाय संतान को उपदेश और आश्वासन देने के लिए इस क्षुद्र भिक्षुक जगत में अवतीर्ण हुए हैं। क्या इतने पर भी हम लोग नाचें गावें न? बोलो, क्या, कहो तो मुकुन्द?

न्याय--अच्छा ब्रह्मचारी तुम तो पंडित और बुद्धिमान हो। क्या तुमको भी विश्वास है कि 'वही ब्रह्म' इस पृथ्वी पर आ सकता है?

शुक्ला--क्यों नहीं, श्रीकृष्ण तो आए थे!

न्याय--उस समय की बात तो रहने दो।

शुक्ला--अच्छा समझे। तुम नैयायिक हो, श्रीकृष्ण को तुम



भला क्यों मानने लगे। अच्छा तुम भगवान को तो मानते हो और यह भी मानते हो कि वह दयामय है।

न्याय—हां अवश्य मानते हैं। सब शास्त्र उसको दयामय कहते हैं। मन भी उसको दयामय मानता है।

शुक्ला—आप लोग नहीं मानते, हम मानते हैं। हम उसको दयामय कहते हैं। इसी से हम लोगों को विश्वास है कि वे जीवों का दुःख देखकर करुणा से स्वतः उनको आश्वासन देने के लिए आते हैं। यह हुई सीधी बात। आप लोग मुख से दयामय कहते हैं, मन से नहीं। इसी से इस बात का विश्वास नहीं करते कि वह अवतार लेकर पृथ्वी पर आ सकते हैं।

न्याय—निमाई पंडित ही वह भगवान हैं यह किस प्रकार जाना।

शुक्ला—उनके पास जाओ वही बतला देंगे। वहाँ कौड़ी भी न खर्च होगी। हम जानते हैं और भली प्रकार जानते हैं। न जानने से यह आनन्द कहाँ पाते ? न जानने से हिन्दू होकर उनके श्रीचरण पर गंगा-जल फल तुलसी चढ़ाकर कैसे पूजा करते ? इच्छा करने से क्या कोई मनुष्य को भगवान कह सकता है ? उन्होंने हमारे चित्त पर अधिकार करके अपने को भगवान कहलवाया है।

('देख लिया, देख लिया' कहते हुए एक मुसलमान दर्जी का प्रवेश)

दर्जी—देख लिया, देख लिया, महाशय ! देख लिया, देख लिया ।

(नृत्य)

शुक्ला—यह देखो ! यह भाग्यवान मुसलमान दर्जी का काम करता है । कुछ काम के लिए श्रीवास के घर गया था वहाँ प्रभु का दर्शन किया । उसको भगवान के कैसे दर्शन हुए यह वही जानता है । इस घटना को आज सात दिन हुए पर उसी दिन से यह न खाता है न सोता है केवल "देख लिया देख लिया" कहकर चारों ओर पागल सा नगर में घूमा करता है और नाचा करता है ।

न्याय०—दर्जी तुमने क्या देखा है ।

दर्जी—क्या नहीं देखते कि नदिया में कैसा हलचल पड़ा हुआ है । (नाचता है) यह देखो सब नाचते हैं और बीच में सुन्दर श्रीकृष्ण नृत्य करते हैं ।

(सबका प्रस्थान)



२—गर्भांक

निमाई पंडित के घर के सामने

(निमाई पंडित और एक बालक बैठे हैं कई नागरिकों का प्रवेश और प्रणाम)

प्र० ना—(हाथ जोड़कर) प्रभु ! हम लोग भवसागर में पड़े गोते खा रहे हैं। अपने चरण-रूपी नाव का आश्रय देकर हमारा उद्धार करिए।

द्वि० ना०—प्रभु ! दीनों पर आपकी बड़ी दया रहती है। किन्तु मेरे समान अस्पृश्य पामर भी त्रिलोक में न पाइयेगा। हम जानते हैं कि हमारे उद्धार के लिए ही आप पृथ्वी पर पधारे हैं।

प्र० ना०—यह बात ठीक है। आपको साधु लोगों से क्या काम ! रोगी ही वैद्य के पास जाता है। हम लोग इस भव-रोग से जर्जर हो रहे हैं, हम लोगों का रोग दूर कीजिए।

निमाई—तुम लोग इस तरह दैन्य मत करो। तुम लोगों की दीनता देखकर हमारा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। कृष्ण कृपामय हैं। वह सबका उद्धार करेंगे।

बालक—देखिये ! हमको बालक समझकर मत छोड़ दीजियेगा। मृत्यु वृद्ध की भी होती है। अरे ! पिता क्रोध से भरे इधर ही चले आ रहे हैं।

(बालक के पिता का प्रवेश)

बा० पिता—(बालक की ओर देखकर) क्योंरे ! तैं पाठ छोड़कर यहाँ आया है ? आज दो दिन से खोजकर हार गए पर तैं नहीं मिला। चल घर चल, वहाँ चलने पर तुम्हारी खूब कुंदी होगी।

बालक—बाबा क्षमा करिए। हमने प्रभु को पालिया है। हमारा पाठ अब पूर्ण हो गया। हमारे सांसारिक जीवन की बस यहीं पर इतिश्री है।

बा० पिता—अपनी पंडिताई अपने पास रख और मेरे संग चल। ओ निमाई पंडित ! तुमने मेरे लड़के को क्यों फुसला रखा है।

प्र० ना०—आपका लड़का आप ही यहाँ पर आया है, आप अभी उसको लिवाजाइए।

बा० पि०—अपने से कैसे आया जी ? निमाई पंडित तुमने मेरे लड़के को पिता से विरोध करना सिखलाया है। नह मेरे सामने कभी मेरी बातों का उत्तर नहीं देता था। हमारे लड़के को तुम छोड़ दो नहीं तो तुम्हारा भला नहीं होगा।

बालक—(निमाई का पैर पकड़कर) प्रभु ! मेरे पिता आपको नहीं पहचानते इसीसे कर्कश बातें कर रहे हैं। आप उनको क्षमा करिए।

बा० पिता—क्यों रे ! पहिचानते क्यों नहीं, खूब पहिचानते

हैं। निमाई तो जगन्नाथ का बेटा है। हम लोगों ने नगर में इस बात का विचार कर लिया है कि इस पाषंडी को उचित दण्ड दिया जाय।

बालक—बाबा यह क्या कहते हो। (पिता के चरण पर गिरकर) तुम जिसको दण्ड दिया चाहते हो वह पूर्ण ब्रह्म सनातन हैं। वह मेरे, तुम्हारे, और जगत के पिता हैं। (पिता का चरण छोड़कर निमाई का चरण पकड़ना) प्रभु ! पिता आपको नहीं पहचानते इसी लिए ऐसा दुर्वाक्य बोलते हैं। हमने अपना मन आप को अर्पण कर दिया है मेरे ऊपर कृपा कर मेरे पिता को क्षमा करिए और उनको अपना परिचय दीजिए।

बा० पिता—तेरे ठाकुर का परिचय तो मैंने पहिले ही दे दिया कि उसी कंगाल जगन्नाथ का लड़का है। मेरा नाम अग्निशर्मा है; मुझको नगर में कौन नहीं जानता ? वृथा क्रोध मत बढ़ा। अरे पाषंडी निमाई पंडित, तू बालकों का क्या ठाकुर बना हुआ है ? तुझ पर यदि प्रहार किया जाय तो तू क्या करेगा ?

निमाई—(सहास्य) अच्छा जी तुम एक बार हरि नाम तो बोलो पीछे हम पर जितना चाहे प्रहार करो।

बालक—(रोते रोते बालक का फिर प्रभु के चरण पर गिरना) हमारे बाबा का सर्वनाश हुआ। प्रभु ! क्षमा

करिए हम आपके पैर पकड़ते हैं। मेरे पिता को क्षमा करिए और उनको अपने यथार्थ रूप का परिचय दीजिए।

बा० पि०—(क्रोध से काँपते हुए) आज ही हम तेरे पाषंड का दलन करेंगे। देखें कौन तेरी रक्षा करता है?

(लाठी लेकर मारने को तैयार होना)

निमाई—(हाथ उठाकर) कृष्ण तुम पर दया करें, तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारा चित्त सहजही पवित्र होना चाहिए सो वहाँ मलिनता ने कैसे प्रवेश किया! हमारे वरदान से तुम में भक्ति हो।

(बालक के पिता का स्थिर हो दण्डवत् खड़ा हो जाना, फिर कुछ काँपना, मुख से कुछ एक आधे शब्द का निकलना और पुनः मूर्च्छित होकर गिर पड़ना)

प्र० ना०—अहा! मूर्छित हो कर गिर पड़ा। अच्छा कान के पास कृष्ण कृष्ण कहो।

(बालक के पिता के कान में ऊँचे स्वर से कृष्ण का नाम सुनाना, उसका लोट पोट करते हुए घड़ी घड़ी कृष्ण का नाम लेना और उठकर प्रभु के चरण पर गिरना)

बा० पि०—प्रभु, इसी हेतु तुम्हें दयामय कहते हैं। जगाइ मधाई तुमको मारने गए परन्तु उन पर भी तुम्हारी कृपा हुई। हमने भी उसी तरह आपकी कृपा पाई। हम जनम के गँवार हैं। शुभ मुहूर्त में हमारा पुत्र जन्मा, शुभ घड़ी में हमारे पुत्र ने आपको पहिचाना,

शुभ क्षण में हम लड़के को खोजते हुए यहाँ आए और शुभ मुहूर्त में हमारे ऊपर शनि की सवारी हुई तथा शुभ क्षण ही में हमारे में यह दुर्मति उपजी कि आप को मारना चाहता था।

निमाई--(बालक से) तुम अपने परम भक्त पिता के साथ घर जाओ, पढ़ना क्यों बन्द करते हो। पढ़ो और श्रीकृष्ण का भजन भी करो।

बालक--हमारी मां की गति कैसे होगी ?

द्वि० ना०--अपनी मां का भार तुम लो और तुम्हारे पिता लें। इस समय प्रभु को कुछ आराम करने दो।

प्र० ना०-पतितपावन प्रभु ! हम लोगों की क्या गति होगी?

निमाई--तुम लोग घर जा कर कृष्ण कीर्तन करो। आप करो और दूसरों से भी कराओ। यदि तुम एक जीव को भी भक्ति पथ पर ले आओगे तो श्रीकृष्ण को मोल लेलोगे।

नागरिक गण........ **काफी**

चन्द्र उदय नदियांहि भयो, आनँद सों नद पूरि रह्यो।
पापी तापी अंधऽरु आतुर को दल गावत आइ रह्यो॥
आनँद सों०

[सब कोई प्रणाम कर गाते गाते जाते हैं]

(हरिदास के साथ अवधूत निताई का प्रवेश)

निताई——(श्री निमाई की ओर अँगुली दिखा दिखा कर नाचते और गाते हैं।

कहु गौरांग भजु गौरांग जपु गौरांग नाम रे।
भजत जो गौरांग चन्द्र तासों मोहिं काम रे॥
दिवस अंत गौर को जो नाम लेत एक बार।
होत सो हमारो, होयँ हमहुँ ताके गरे हार॥

निमाई——(खड़े हो कर) श्रीपाद! शांत हो।

निताई——'भजु गौरांग कहु गौरांग लेहु गौरांग नाम रे'

निमाई——श्रीपाद! शांत हो।

(निताई का क्षण मात्र शान्त होना)

हरिदास—आज नाम-प्रचार के हेतु बाहर होते ही श्रीपाद एकदम विह्वल हो उठे हैं। वाह्यज्ञान-शून्य होकर बस इसी प्रकार नगर नगर में, घर घर में और प्रत्येक मनुष्य को उपदेश कर रहे हैं। प्रभु! आश्चर्य तो यह है कि आपको न पहिचान कर अपनेही को भजन के लिए आपको इस प्रकार उपदेश कर रहे हैं।

निताई—(प्रभु का चिबुक धरकर गाना) 'भजु गौरांग कहु गौरांग लेहु गौरांग नाम रे'।

निमाई—हमको यह उपदेश देनाही होगा। जीवमात्रही आप अपने को भजते है, किंतु श्रीपाद! हम विनती करते हैं कि शांत रहो।

(निताई का चैतन्य होना)

निताई—(हा ! हा ! कर के हँसना) अरे यही प्रभु हैं। हमने नहीं पहिचाना। हमने समझा कि आप भी हमारे ऐसे संसाररूपी दावानल में कोई एक दग्ध जीव हैं।

निमाई—श्रीपाद ! आइए हम लोग बैठें। (सब कोई बैठते हैं) श्रीपाद ! आपसे हमको कुछ विशेष परामर्श करना है।

निताई—जो आज्ञा।

निमाई—जीवों की धीरे धीरे कैसी दुर्दशा हो रही है सो आप देखते ही हैं। उन लोगों की अवस्था पर विचार कर हमारा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। सभी निस्सार विषय वासना में डूबे हुए हैं। थोड़े दिनों में मरना होगा यह जानकर भी अनजान बने हुए हैं। श्रीपाद ! तुम हमारे ही पथ के पथिक हो इसीलिए तुमसे कहते हैं।

निताई—प्रभु ! जब आपही स्वतः अवतीर्ण हुए हैं तब जीवोद्धार की शंका ही क्या ?

निमाई—श्रीपाद ! अब हमसे जीवोद्धार नहीं हो सकता। सुना है नगर में क्या सम्मति हो रही है ? नगरवासी गण हमको मारेंगे।

निताई—(कान पर हाथ धरकर) प्रभु ! वह बात मत कहिए, उसके सुनने से नरक में जाना पड़ेगा। जो आप

को मारना चाहते हैं वे पशु हैं । हा ! उनकी क्या गति होगी ।

निमाई—उन लोगों का क्या अपराध है ? अपराध तो हमारा है ।

निताई—आपका यही अपराध है कि गोलोक को छोड़कर इस दुखःमय संसार में आए । क्यों ! जीवों के हित के लिए न । आप मनुष्यों के दुःख को नहीं सह सकते । आप पतित जीव को देखकर पुत्र-शोकातुर प्राणी के समान रुदन कर उठते हैं । अवश्यही आपका बड़ा अपराध है ।

निमाई—नगरवासियों का क्या दोष ? हम हरि—नाम प्रचार करते हैं । लोग हमको उत्तम वस्त्र पहने देखते हैं, गले में सोने का हार भी पड़ा हुआ है और दूध घी खाते हुए देखते हैं । इससे उनको क्रोध होता है और हमारे निकट हरिनाम ग्रहण करने की उनको इच्छा नहीं होती ।

निताई—क्या दूध घी खाने से कोई पतित हो जाता है ।

निमाई—सो नहीं । मनुष्य का मन स्वभावतः ऐसा होता है कि जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहते हुए अपने सुख में मस्त है उससे वह धर्म शिक्षा नहीं ग्रहण करना चाहता । श्रीपाद ! अतः हम सन्यासी होंगे । सन्यासी होने पर जो हमको मारना चाहते हैं उनके सामने जा कर हरिनाम की भिक्षा माँगेंगे ।

निताई—प्रभु ! क्या यह आपके मन की बात है ?

निमाई—हाँ, दृढ़ संकल्प ।

निताई—प्रभु ! इस सर्वनाशी संकल्प को छोड़ दीजिए । सन्यासी होंगे तो हम को क्या, हम तो तुम्हें छोड़ नहीं सकते, आप जहाँ जाइएगा वहाँ हम भी जायँगे । किंतु माता के सम्बन्ध में क्या सोचा है ? उनकी बहत्तर वर्ष की अवस्था हुई और आपके अतिरिक्त उनको कोई नहीं है ।

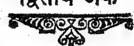
निमाई—माता को दुःख होगा, ऐसा विचार करने से तो फिर जीवों का उद्धार नहीं होगा ? हमारी माता दया-मयी हैं । तुम देखोगे कि वह स्वयं हमको सन्यासी होने के लिए आज्ञा देंगी । हम फटा कपड़ा और कौपीन पहिरकर जब उन लोगों के सन्मुख, जो हम को मारना चाहते हैं, जाकर कहेंगे कि "यह हम आए हैं हमको मारो" तब हमारी दशा देखकर वे लोग मुझे न मारेंगे और उस अवस्था में हम जिससे हरिनाम लेने को कहेंगे वह उसी समय लेने लगेगा ।

निताई—प्रभु ! ऐसी निष्ठुरता मत करिएगा । आपके सन्यास लेने पर माता प्राण दे देंगी । विष्णुप्रिया देवी प्राण त्याग करेंगी और आपके भक्तगण भी सब साथ ही मर जाएँगे ।

निमाई—श्रीपाद ! हमारी वृद्धा जननी ही कंटक स्वरूप हैं, यह मुझे मालूम है परन्तु चाहे जो हो अब हम घर पर नहीं रह सकते । श्रीकृष्ण ने हमारा चित्त चुरा लिया है, हम उनको खोजने के लिए वृन्दावन जाएँगे ।

हरिदास—प्रभु ! यह क्यों कहते हैं ? जहाँ आप हैं वहीं बृन्दावन है । आप घर छोड़ेंगे यह बात सुनतेही किसी का प्राण न बचेगा ।

निमाई—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा । माता को भिखारिणी बनाकर और तुम लोग ऐसे प्रिय बन्धुओं को छोड़कर हम चले जायँगे, यह क्या हमारी इच्छा है ? किन्तु हम घर पर रहेंगे यह सोचते ही हमारा हृदय विदीर्ण होने लगता है । बंधुगण, मेरा और अपना दुःख मत देखो । जीवों का दुःख देखो । (ऊपर देखकर) हे कृष्ण ! मेरे ऊपर कृपा करो । तुमको छोड़कर हम नहीं बच सकते, तुम मेरे प्राण के भी प्राण हो । (निताई की ओर देखकर) लोगों को साधारण ज्वर होता है पर हमें कृष्ण का विरह-ज्वर चढ़ा है । मेरे ऊपर यदि तुम लोगों की कुछ भी स्नेह ममता है तो मुझे छोड़ दो जिससे मैं सीधा एक साँस में वृन्दाबन पहुँचकर और श्रीकृष्ण का दर्शन कर अपने प्राण को शीतल करूँ ।



गदाधर—प्रभु ! साहस कर के भी आपके सामने प्रत्युत्तर देते नहीं बनता किंतु अब डर काहेका ? तुम अगर जाओगे तो माता और सब कोई प्राण देदेंगे । प्रभु ! तुम जीवों को भक्ति की शिक्षा देने के लिए ही न अवतीर्ण हुए हो ? वृद्धा माता को कष्ट देकर क्या कोई धर्म हो सकता है, नहीं इससे सब धर्म नष्ट हो जाता है ? तुम अगर जाओगे तो तुमको मातृहत्या का दोष लगेगा ।

निमाई--गदाधर, तुम्हारी बात बिष से भरी हुई है। तुमने हमारे मर्मस्थल को वेदना पहुँचाई है । हमारे जाने में प्रधान कंटक माता है । हम इस बाधा से उत्तीर्ण हों ऐसा उपाय न कर उलटे तुम ऐसा करते हो जिसमें वह बाधा और भी प्रबल हो उठे । यह क्या सुहृदों का काम है ? तुम क्या नहीं जानते कि हमारे जाने न जाने से क्या; हम कुछ अपनी इच्छा से नहीं जाते हैं । प्राणों से प्यारे बन्धुगण ! हमारे जाने में जैसे सुविधा हो ऐसा मित्रों का सा कार्य करो । कृष्ण ! हम बड़े निठुर हैं कि अबतक तुमको छोड़कर यहाँ बैठे हैं । हे कृष्ण, हमको बुला लो, बुला लो । (हाथ उठा कर) हम तुम्हारे ही निकट आवेंगे ।

(मूर्छित होकर भूमि पर गिरना)

निताई—क्या हुआ, क्या हुआ ? (सबका घबड़ाना, किसी का कपड़ा से हवा करना और निताई का ऊँचे स्वर से कान में कृष्ण-नाम सुनाना) प्रभु ! प्रभु ! प्रभु !

निमाई—(चैतन्य होकर पृथ्वी पर लोटना और रोते रोते कहना) कृष्ण तुम कहाँ हो ? अब हम नहीं बच सकते, हमारा प्राण निकल रहा है । हा नाथ ! तुम कब आओगे ? हमारे मर जाने पर क्या तुम आओगे ? हम को तुम लोग पकड़ो, हम उठेंगे (गदाधर का पकड़ना और निमाई का उठकर गदाधर को गले लगाना) गदाधर ! क्या तुमने हमारे कृष्ण को उधर जाते नहीं देखा है ? वह किस मार्ग से गए ? गदाधर ! हमारे कृष्ण को ले आकर हमारा प्राण बचाओ ।

गदाधर—कृष्ण तुम्हारे हृदय के भीतर हैं ।

निमाई—क्या कहते हो ? वह हृदय के भीतर हैं तब फिर भला कहाँ भाग सकते हैं ? (नख से हृदय को विदीर्ण करना और गदाधर का निवारण करना)

गदाधर—(रोदन करते करते) यह क्या हुआ, नखाघात के कारण हृदय में से रक्त निकलता है। (वस्त्र से पोछना)

निमाई—कृष्ण हम क्या तुमको छोड़कर रह सकते हैं ? हमारे बन्धु लोग पागल हैं इसीलिए घर पर रहने को कहते हैं । इसी यज्ञोपवीत ने हमको संसारी बना रखा

है, यही दूर हो। (यज्ञोपवीत को टुकड़े टुकड़े करना) लो हम वृन्दावन चले। (उठकर चलना, निताई का हाथ फैलाकर रोकना और निमाई का गिरकर मूर्छित हो जाना)

हरिदास—आज क्या प्रभु हम लोगों को जन्म भर के लिए छोड़कर चले गए !

निताई—(प्रभु के कान में ऊंचे स्वर से कृष्ण का नाम सुनाना) प्रभु ! तुम जीवों पर दया करने जाकर हम लोगों को छोड़ते हो, तो क्या हम लोग जीव नहीं हैं ? (निमाई का चैतन्य होना, कृष्ण कृष्ण कहकर लोटना और रोना)

(निताई का श्री प्रभु को उठाना और प्रभु का दोनों पैर फैलाकर गदाधर के सहारे बैठना)

निमाई—बन्धुगण, हमारे पास आओ। (हाथ जोड़कर) हम बिनती करते हैं, हमको बिदा दो।

हरिदास—(रोते रोते प्रभु का चरण पकड़कर) प्रभु ! आप हम लोगों के प्राण हैं। आपके चले जाने से हम लोग जीवित नहीं रह सकते।

मुकुन्द—(ऊँचे स्वर से रोदन) प्रभु ! तुम जाओगे ऐसा क्या हो सकता है ? तुम प्राणों के भी प्राण हो। तुम जाओगे यह बात मन में भी नहीं आती। (प्रभु का

चरण पकड़कर) प्रभु ! जननी को मत छोड़ो, वह मर जाएगी ।

निमाई––तुम लोग शांत हो । हम इसी समय तो जाते नही हैं, इसके बारें में फिर बात होगी ।

निताई—(गदाधर से) चलो प्रभु को स्नान कराने ले चलो । प्रभु ! समय होगया, स्नान को चलिए ।

(सबका प्रस्थान)

३—गर्भांक

[स्थान—शची का अन्तःपुर]

(शची और ईशान)

दशची—ईशान ! देखो निमाई सचेतन है कि अचेतन ? या सचेतन हों तो उनको बुला लो ।

(ईशान का प्रस्थान और निमाई का प्रवेश)

निमाई—(गले में कपड़ा डालकर माता को साष्टांग प्रणाम करना) माता, क्या आपने हमको बुलाया है ?

शची—हाँ बेटा, बैठो । (निमाई का बैठना) भैया, हमने यह क्या सुना है ?

निमाई—क्या सुना है माँ ?

शची—जो सुना है, वह हम अपने मुंह से नहीं कह सकतीं । वह बात सुनतेही हमारा प्राण सूख गया । तुम क्या हम लोगों को छोड़कर जाओगे ?

निमाई—हां मां, हम किसी तीर्थ में कृष्ण और कृष्णप्रेम को खोजने जाएँगे । उससे मां आप दुखित क्यों हैं ? हम फिर आवेंगे ।

शची—यह नहीं, तुम क्या वही करोगे जो तुम्हारे भाई ने किया था ।

निमाई—(सिर झुकाकर) हां मां वही तो । हम फिर तुमसे मिलेंगे ।

शची—हमको बार बार यही कहकर आश्वासन देते हो कि फिर मिलेंगे । किंतु वह होकर, वह होने से-हमारे मुख से उसका नाम नहीं निकलता-तुम कौपीन पहिरकर द्वार द्वार भिक्षा माँगकर खाओगे । अच्छा निमाई ! हम बड़ी कठोर हैं यह हम जानती हैं । नहीं तो मेरी आठ लड़कियाँ मरीं, विश्वरूप के समान पुत्र सन्यासी हो गया और हम जीवित हैं । किन्तु ऐसी कौन माता होगी जो यह सब सहन कर सकेगी । हा निमाई ! तुम हमको छोड़कर सन्यासी होगे ।

निमाई—मां, मां हम क्या उत्तर दें कुछ समझ में नहीं आता । मां-

शची—हमारे घर में युवती बहू है । दूसरे की लड़की को घर में ले आए हैं । कहो उसको क्या कहकर समझावेंगे ।

निमाई—मां, यही समझकर कि तुमको कष्ट होगा हम अब तक नहीं गए और अब भी नहीं जा सकते ।

शची—तुम जाओगे तो हम मर जाएंगे । किन्तु बहू की अभी कुल चौदह वर्ष की अवस्था है और वह कब तक जीवित रहेगी सो तो ठीक नहीं है । उस बेचारी का क्या उपाय सोचा है, बोलो ।

निमाई—मां क्या हमारी बात का विश्वास करोगी ? पूरा

हाल सुनो ! तुमने हमारा जिस प्रकार लालन पालन किया है उस प्रकार कोई माता अपने पुत्र का पालन नहीं करती। पिता के वैकुंठ-गमन करने पर तुम्हीने मेरा पालन किया और विद्याध्ययन कराया। क्या हम अपनी इच्छा से तुमको छोड़कर चले जा सकते हैं? मां ! हमको कोई खींचे हुए लिए जाता है। हम अपने वश में नहीं हैं। श्री कृष्ण हमको लिए जाते हैं, हम अपनी इच्छा से नहीं जाते।

शची—भैया माता की हत्या मत करो, पाप होगा और दूसरे की लड़की विष्णुप्रिया को बिना दोष त्याग देने से तुमको पाप होगा। बेटा, तुम जगद्विजयी भक्त होकर ऐसा काम क्यों करते हो ! तुमको इससे धर्म नहीं होगा प्रत्युत् तुम्हारा धर्म इससे नष्ट होगा।

निमाई—मां श्री कृष्ण ही संयोग और वियोग कराते हैं। उनकी जो इच्छा होती है वही होता है। हम लोगों की चेष्टा व्यर्थ है। माँ श्री कृष्ण का भजन ही जीवों का प्रधान कार्य है और सब निष्फल है। माँ हम जो काम करने जाते हैं उससे हमारा हित होगा और मेरा भला होने से तुम्हारा भी भला होगा। तुम हमारा भला निस्वार्थ रूप से चाहती हो। मां तुम सामान्य माया मुग्ध जीव की तरह हमारे इस महत कार्य में मत बाधा डालो।

शची—भैया, हम तुम्हारी बात कभी नहीं टालतीं। हमसे यदि हो सकेगा तो तुम जो कहोगे वही करूँगी। कहो, क्या करना होगा ?

निमाई—मां, तुम हमको सरल मन से विदा दो। कारण कि तुमको दुःख देकर जाने से हमको अधर्म होगा और तुमको दुःख देकर जा भी न सकेंगे।

शची—तुमको बिदा दे सकती हैं और दी किन्तु सरल मन से नहीं बिदा दे सकतीं। कारण कि हम माता हैं और हमें कोई दूसरा नहीं हैं। तुम हमें जो करने को कहते हो वह कोई नहीं कर सकता।

निमाई—मां, तब तो हम न जा सकते हैं और न कृष्ण को पा सकते हैं। मां जननी स्नेहमयी ! तुम जिस स्नेह के वश होकर हमको नहीं जाने देती हो, हम तुम्हारे उसी स्नेह से निवेदन करते हैं कि जिसमें हमारे मन को सुख हो, हमारा स्थायी मंगल हो, हमारे सब बन्धुओं का तथा जीव मात्र का मंगल हो, स्नेहमयी ! तुम हमको वही कार्य करने दो।

शची—तब तुम जाओगे, सत्यही जाओगे ? जाओ ! आओ तुमसे मिल लें और जन्म भर के वास्ते तुम्हारा मुख देख लें।

(निमाई का गला पकड़ कर चुम्बन और मूर्छा)

निमाई—क्या हुआ, क्या हुआ! (जननी को गोदी में लेकर) मां उठो, हम नहीं जाएँगे। मां! हम तुम्हारा वध करके नहीं जाएँगे। कृष्ण, कृपामय, हमारी वृद्धा जननी को शक्ति दीजिये।

(शची के कान में कृष्ण नाम सुनाना और शची का चैतन्य होना)

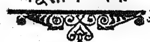
शची—हे निमाई, निमाई! (रोना) कृष्ण कृपामय हम किस प्रकार इस शून्यगृह में रहेंगी? जिस निमाई को एक क्षण न देखने से प्राण निकलता है उसके बिना कैसे मेरे दिन रात कटेंगे? नहीं, हमने ठीक नहीं कहा। हम अपने लिए सोच रही हैं, हम निमाई के लिए और सर्वोपरि बहू विष्णुप्रिया के लिये नहीं सोचतीं। निमाई, मेरी दूध पीती बच्ची किस प्रकार वृक्ष के नीचे पृथ्वी पर सोएगी? उसके कमल पत्र के समान चरण कैसे मार्ग चल सकते हैं? वह भिक्षा माँगकर खाएगी और कौपीन पहिरकर द्वार द्वार घूमेगी। उसको कौन भोजन बनाने को देगा! हमारा निमाई रात दिन कृष्ण नाम में विह्वल रहता है उसको कौन चैतन्य कराकर खिलावेगा। मेरी बहूरानी की अवस्था चौदह वर्ष की है उसको क्या कह कर समझाऊँगी। बहू को देख हमारी छाती रात दिन सुलगा करेगी। हे अगतियों के गति कृष्ण, गति दो।

निमाई—मां, शांत हो हम नहीं जाएँगे।

शची—नहीं भैया, हम वह नहीं कह सकतीं। जब कि तुम

कहते हो, कि कृष्ण तुमको ले जा रहे हैं और जाने से तुमको सुख और जगत का मंगल होगा, घर पर रहने से तुमको दुःख और जगत का अनिष्ट होगा, तब हम ऐसी माता नहीं हैं कि तुमको वाधा दें । तुम स्वछन्द हृदय से जाओ पर मेरा हृदय यदि विदीर्ण हो जायगा तो हम क्या करेंगी ?

निमाई—एक कथा सुनो । एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी 'अपने पुत्र को राक्षस के भोजन के लिए देना होगा' कहकर रो रहे थे । उसी गृहमें बनबास के समय कुन्ती पाँचो पुत्रों समेत रहती थी । कुन्ती ने ब्राह्मण ब्राह्मणी का दुःख देखकर अपने पुत्र भीम को उसके बदले में दे दिया । मां ! कुन्ती जगत में इसीलिए धन्य है । हम एक महत उद्देश साधन के निमित्त जाते हैं । मां जीवगण हाहाकार कर रहे हैं । मां उन लोगों के दुःख से हमारा हृदय विदीर्ण हो रहा है । हम इसीलिए जाते हैं कि उनका दुःख दूर कर सकें, और श्री कृष्ण के साथ उन लोगों का परिचय करा दें । मां हमको वध करके यदि प्राणी मात्र का मंगल हो तो क्या तुम उसको नहीं करोगी और ऐसा करने से क्या तुम कृष्ण को मोल न ले लोगी ? मां ! हमको वध करने के लिए मत कहो, मां ! हम जायँगे फिर आवेंगे । तुमसे प्रतिज्ञा करके कहते हैं ।



शची—भैया, हमको तो समझा दिया, उस बालिका बहू को क्या कहकर समझाओगे सो कहो तो सही ?

निमाई—वह सरल मन से हमको विदा दे देगी।

शची—वह हो सकता है क्योंकि तुम्हारी शक्ति से नदिया इस समय कुछ और ही हो रही है। सब कोई कृष्ण नाम में उन्मत्त और संसार से उदास हो रहे हैं। तब भी बहू तुमको स्वेच्छा-पूर्वक विदा दे दे यह नहीं हो सकता।

निमाई—उसका यदि मेरे ऊपर शुद्ध प्रेम होगा तब समझाने में कोई कष्ट नहीं है ? हमने उसको एक प्रकार से समझा दिया है। हमने उससे कहा था कि 'हे साध्वि ! तुम हमारा हित चिन्तन करती हो और हम तुम्हारा। हम भी रहेंगे और तुम भी रहोगी। हम लोगों के मन का मिलन किसी न किसी प्रकार होता ही रहेगा तब तुम इससे क्या अधिक चाहती हो ? हमारे संसार-त्याग करने से हमारा मंगल होगा। ऐसे कार्य में क्या तुम अपने सांसारिक सुख के निमित्त बाधा डालोगी ?' उसने स्पष्ट रूप से कहा "नहीं।" उसके लिए मां हमारा एक निवेदन है। हमारे गृह त्याग करने पर उससे मेरा संबंध टूट जायगा। तुम एक काम करना कि उसको कृष्ण नाम की शिक्षा दे देना।

शची--भैया, तुम्हारी स्त्री को कृष्ण नाम की शिक्षा क्या हमको देनी होगी ! भैया, उसके साथ तुम्हारा संबंध लोप होगा तो क्या मेरे साथ न होगा ? अरे निमाई, क्या अब मुझे मां नहीं कहोगे !

निमाई--शास्त्रानुसार तो नहीं कह सकते, पर हम कहेंगे। इस समय और उसके अनन्तर भी तुम हमारी मां रहोगी, यह हम सत्य सत्य कहते हैं ।

शची--तब हमारी एक बात मानो । तुम कुछ दिन ठहर जाओ हम तुमको आँख भर देखलें और अच्छी तरह खिला पिलालें ।

निमाई--मां, जो आज्ञा । अब हम हलके हो गए और अन्य गृहस्थों की तरह रहेंगे ।

इति द्वितीय अंक ।

तृतीय अंक

१—गर्भांक

[स्थान—शची के घर का आँगन]

(नित्यानन्द और भक्त मण्डली सहित शची तथा निमाई। नेपथ्य में 'हरि बोल हरि बोल' की ध्वनि। कई भक्तों का प्रवेश)

भक्तों का गान—

प्रभु तुम अतिही दीनदयाल।
साधु मुख सों सुन्यो ऐसो बचन मधुर रसाल॥
अहैं डूबत भवसमुद महँ रहे टेरि कृपाल।
पतित पामर दीन जौ हम नाथ दीनदयाल॥
अगति के गति स्वामि तुम हौ हमहिं यह विश्वास।
पाप को तम काटिबे हित आइ कीन प्रकास॥
पतित हम सों कहूँ नाहीं सरन आयों नथा।
केस गहिकै झट उबारौ करौ हमहिं सनाथ॥

(भक्तों का प्रभु को प्रणाम करना और हाथ जोड़ कर सामने खड़े रहना)

निताई—प्रभु! आज सारे नगर के लोग आपके दर्शन के लिए चले आरहे हैं।

निमाई—(आप ही आप) इसीलिए कि हम अब बिदा होंगे।

निताई—प्रभु, आपने क्या कहा सो कुछ समझ में नहीं आया।

निमाई—(भक्तों के प्रति) तुम लोगों की श्रीकृष्ण में मति हो।

प्र० भक्त०—आज्ञा दीजिए कि यह माला आप के गले में पहिनादें ।

निमाई—आगे आओ (निमाई का अपने गले की माला भक्त को पहिराना और भक्तों का नई माला प्रभु को पहिराकर साष्टाङ्ग प्रणाम करना)

द्वि० भ०—कुछ मलाई ले आए हैं । प्रभु, ग्रहण करिए, हमारे कुल का उद्धार हो जायगा ।

(मलाई का पात्र रखकर प्रणाम करना)

तृ० भ०—हम थोड़ा सा दूध लाए हैं । प्रभु ! उसको ग्रहण कर हमारे कुल को पवित्र करें ।

(दूध का पात्र रखकर प्रणाम करना)

च० भ०—हम थोड़ा मक्खन लाए हैं उसे प्रभु ग्रहण करें । (मक्खन रखकर प्रणाम करना) प्रभु ! यह बतलाइए कि हम लोग किस प्रकार भवसागर को पार कर सकेंगे ।

निमाई—तुम लोग नाम संकीर्तन करो । दस पाँच मनुष्य मिलकर कीर्तन करो । नहीं तो स्त्री पुत्र, पिता माता, भाई बहिन को साथ लेकर कीर्तन करो । मृदङ्ग करताल न हो तो केवल हाथ से ताली बजाकर नाम कीर्तन करो । इस में कोई नियम नहीं है । शुद्धाशुद्ध, रात दिन इसका कुछ विचार नहीं करना होगा ।

सकल—जय शचीनन्दन ! जय पतितपावन ! जय दीनानाथ !

निमाई—और तुम लोग जब तक हो सके नाम जपा करना। नाम यों है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

भक्तगण—

करुना करहु सचीनंदन प्रभु नित प्रति तव गुन गावैं।
हमरे तौ तुम तुमरेई हम बृथा भूलि भरमावैं॥
वदन कमल तव ससि सम सीतल अंधकार बिनसावै।
मलिन निसाकर सो उपमा कत सारद चंद लजावै॥
चरन कमल जुग-मधु को लोभी मन भँवरा बौरावै।
करिकै दया दीन कों दीजै दान भक्ति को पावै॥

(गीत के समय प्रभु का लजाकर बैठना)

सब कोई—हरि हरि बोलो।

प्रभु—तुम लोग हमको क्यों लज्जित करते हो।

(श्रीधर का लौकी लेकर प्रवेश और लौकी रखकर प्रणाम करना)

निमाई—क्यों श्रीधर इतनी रात को यह लौकी?

श्रीधर—दर्शन के निमित्त खाली हाथ कैसे आते। और कुछ नहीं मिला तो केवल लौकी ही लिए चले आए।

निमाई—रात बहुत बीत गई अब घर जाते जाओ। (स्वगत) श्रीधर की वस्तु नष्ट हो यह नहीं हो सकता इसलिए आज रात ही को इसे खाना होगा। (प्रकाश) मां! दूध है और लौकी है, खीर बनादो।

मां मेरे निमित्त कैसा हार बनवाया है सो हमने नहीं देखा है और श्री अद्वैताचार्य्य ने जो महीन शान्तिपुर की धोती भेजी है उसको भी लेती आओ ।

शची—(आनन्द के साथ) जाँय बहू से खीर करने को कह दें । तब हार और धोती भी लेआवें । उन्हें अभी ही पहिरना होगा जिससे हम देखकर आँखें शीतल करें ।

(शची का प्रस्थान)

श्रीधर—

डूबि रहे हम ह्याँ परे मोह-नदी के भौंर ।
निज पद नाव चढ़ाइ मोहिं पार करहु श्रीगौर ॥

(शची का प्रवेश)

शची—यह धोती और हार रखा है, पहिरो हम आँख भर देखें ।

निमाई—(गहना और कपड़ा पहिरते पहिरते) हां पहिरते हैं । (मन में) नहीं तो तुम्हारे मन में बड़ा कष्ट होगा । (पहिरकर) देखो मां कैसा लगता है । किंतु इसको पहिरकर बाहर जाने से लोग चिढ़ावेंगे ।

शची—क्यों बच्चा, तुम तो अभी लड़के ही न हो । नदिया में तो तुमको बाल गुरु ही सब कोई कहते हैं । भोजन तैयार है, रात अधिक बीत गई, शीघ्र ही भोजन के लिए आओ । सबको विदा कर दो ।

(सबका प्रस्थान)

२—गर्भांक

[स्थान—निमाई का शयन गृह]

(निमाई शैय्या पर बैठे हैं)

निमाई—(स्वगत) हार पहिरा, धोती पहिरी और अब दोचार घड़ी बाद स्वदेश और संसार त्याग करेंगे। न पहिर लेने से माता को इस बात का बड़ा दुःख रहता कि हमने इन नई वस्तुओं को एक दिन भी नहीं पहिरा। विष्णुप्रिया से पहिले ही विदा ले चुके हैं। आज रात्रि बीतते हम गृह त्याग करेंगे, यह बात वह भी नहीं जानती और कोई भी नहीं जानता। आज रस की बात करना होगा। आज विष्णुप्रिया को आनन्द—सागर में डुबाना होगा। आज एक बार युवती स्त्री के युवक स्वामी बनकर उसके साथ खेलना होगा। इसके लिए लोग मेरी निन्दा करेंगे। कहेंगे "उसको जन्मभर के लिए त्याग कर जाने के दिन प्रीति क्यों बढ़ाया? इससे उसका स्वामी—विरह—जनित कष्ट और बढ़ेगा।" हमारे आज रात्रि के प्रीति—व्यवहार से उसकी विरहाग्नि प्रबल हो जायगी। पर हमको वह शीघ्र भूल जाय यह भी तो ठीक नहीं। हमारे प्रति उसकी प्रीति जिसमें बढ़े वही करना उचित है। स्त्री को यह उचित है कि क्षणभर के लिए भी

स्वामी का चित्र अपने हृदय से न हटावे। हमारा विरह जीवों का, विशेषतः विष्णुप्रिया का, बहुमूल्य धन है।

(फूल का गजरा, चन्दन आदि उपहार हाथ में लिए हुए श्रीमती का प्रवेश कर द्वार बन्द करना)

निमाई—(सहास्य) आओ, आओ प्रिये ! मेरी प्राणप्रिये !

विष्णुप्रिया—आज बड़ा आदर है । इतना आदर देखकर हमको भय होता है। तुम जब शयन गृह में आते थे तब विह्वल रहते थे और कृष्ण कहकर रोते थे। तुम प्रायः घर में आकर हमको नहीं देखते थे। आज हमारे भाग्य से कैसे इतने प्रसन्न हुए ?

निमाई—देखो हमारे मन में बहुत दिनों से एक बड़ी इच्छा है, उसीको आज पूर्ण करेंगे, इसीसे मन बड़ा प्रसन्न है। आज हम तुमको एक बार सजावेंगे।

विष्णु०—पुरुष भला सजाना क्या जाने ? अच्छा तुम हमको पीछे सजाना पर पहले हम आपको सजालें।

निताई—अच्छा, तो सजाओ।

विष्णु०—अच्छी बात है। तुमने यह सब शृङ्गार कहाँ पाया ? सुंदर हार, बढ़िया धोती।

निमाई—तुम क्या नहीं जानती। माता जी ने मेरे लिए यह हार बनवाया है और श्री अद्वैताचार्य ने शांतिपुर से यह धोती भेजी है।

विष्णु०—हमने सुना था, पर देखने के लिये अवकाश कहाँ मिले ? दिन रात अतिथि सेवा के लिए कितना भोजन बनाना पड़ता है वह तुम क्या जानो ? हमको वह हार दो, हम उसे भली प्रकार से तुमको पहिरादें ।

निमाई—पहिले तुमको पहिरादें । (हार पहिराना) यह तो तुम्हारा हार है । पुरुष लोग अथवा प्रवीण अध्यापक क्या हार पहिरते हैं ! विशेषकर हम अब कुछ लड़के थोड़े ही हैं ।

विष्णु०—तुमतो आजही प्रवीण और वृद्ध हो गए । चौबीस वर्ष के भी नहीं हुए और बूढ़े होगए ।

(हार पहिराना)

निमाई—यह क्या किया, हमारे साथ हार बदल लिया । तब तो तुम मेरी हो गई ।

विष्णु०—बतलाओ क्या पहले मैं दूसरे की थी !

निमाई—वह हम क्या जानें ।

विष्णु०—तुम्हारा यह भाव देखकर सुख तो नहीं होता पर भय मालूम होता है । तुमको तो इस प्रकार कभी नहीं देखा । विशेष क्या कहें हम स्वयं तुमको ठाकुर समझतीथीं और भय से तुम्हारे निकट आने का साहस नहीं होता था ।

निमाई--भय होता है, मालूम होता है कि काटलेंगे । क्यों

सजाया नहीं, विष्णुप्रिया अहा ! कैसा सुन्दर मुख है और कैसी सुन्दर छबि है ।

(निमाई को सजाना)

निमाई--अब हमारी पारी है । (विष्णुप्रिया को सजाना और हाथ में दर्पण देना) देखो कैसा हुआ ?

बिष्णु०--(दर्पण लेकर निमाई को देना) पहले तुम देखो कि तुमको कैसा सजाया है ।

निमाई—तुम्हारा रूप वर्णन करते हुए हमने एक कविता बनाई है । हम गाते हैं तुम नृत्य करो ।

विष्णु०—स्त्री लोग नाचेंगी, वे और करेंगी क्या ?

निमाई—क्यों, जब हम बाहर कीर्तन में नृत्य करते हैं तब तुम घर के भीतर नृत्य करती हो ।

विष्णु०—वह बात तुमने कैसे जानी ? उस समय क्या वाह्य ज्ञान रहता है, सब कोई अज्ञान हो जाते हैं । ज्ञान शून्य होकर जब तुम कृष्ण कृष्ण कहकर कीर्त्तन करते हो तब हम भी साथ हीं नृत्य करती हैं ।

निमाई—तब तुम राग छेड़ो हम गाना कहते हैं । धुन यह है "लाजन लाल मुख नहिं चहत"

विष्णु०—कहें क्या ? हमको लज्जा मालूम पड़ती है ।

निमाई—हमसे लज्जा करती हो, यह बड़ा अन्याय है ।

विष्णु०—तुमने मेरी लज्जा कब तोड़ी ? तुम हमारे पास जब

आते थे तब ईश्वर बनकर आते थे और हम पूजा करती थीं ।

निमाई—अच्छा गाना सुनो—

लाजन लाल-मुख नहिं चहत ।
लोभ मधु के भ्रमर मानों कमल कों नहिं तजत ॥
अरुन रंजित अधर काँपत पत्र मनु थरहरत ।
आँसुअन झरि लाइ मानों प्रेम जल सों सिंचत ॥
कछु मुँदे कछु खुले नैनन पलक तोरन ढँकत ।
तौन छबि हिय माँझ चुभिकै नेकहू नहिं टरत ॥
चकित चंचल भाव जुत मुख कहा अस छबि गहत ।
कठिन मेरो पुरुष को हिय ताहुपै मद ढरत ॥
प्रियाजी की अहै आज्ञा सोचि तब अस करत ।
गूँथि माला हाथ में दै मोद मन अति लहत ॥

निमाई—तुम्हारी आँखें झप रही हैं, चलो सोएँ ।

विष्णु०—नहीं हम नहीं सोएँगी ।

निमाई—(स्वगत) ऐसा होने से हम कैसे जायँगे ? (प्रकाश) आओ सोएँ । दिया कुछ घटा दो जिसमें एक बार अँधेरा न हो जाय ।

बिष्णु०—नहीं, हम नहीं सोएँगी ।

निमाई—यह क्यों, अस्वस्थ हो जाओगी । क्यों न सोओगी ?

विष्णु०—तुम्हारा भाव देखकर हमारा मन यह कहता है कि

तुम हमको आज ही रात को छोड़ जाओगे । इसीसे इतना आदर करते हो । हम नहीं शयन करेंगी ।

निमाई—(स्वगत) तब तो बड़ा गड़बड़ हुआ (प्रकाश) लेटो, आओ हम दोनों सोएँ ।

विष्णु०—हम कभी नहीं लेटेंगी, सोने पर तुम हमको धोखा दोगे ।

निमाई—(स्वगत) तो क्या जीवों का उद्धार नहीं होगा ? इसको बलात् सुलाना होगा ! (दृढ़ता से प्रगट) सोओ, सोओ ! हमारी आज्ञा से सोओ । अभी सोओ ।

विष्णु०—यह क्या, हमारी आँखो में नींद कैसे भर गई, हम इसको नहीं दूर कर सकतीं । (हाथ जोड़कर) हे निद्रा देवी ! हमको क्षमा करो । तुम यदि क्षमा न करोगी तो प्रभु हमको छोड़ जायँगे । क्या न छोड़ोगी ? न छोड़ोगी ? न छोड़ोगी ! तब तुमको स्त्री-हत्या लगेगी ।

निमाई—प्रिये, तुमने ठीक समझा है । हम अभी जाएँगे परन्तु तुमने जो निद्रा देवी को शाप दिया है वह उसको नहीं लगेगा । इसका कारण जीवों का उद्धार है । प्रिये, मन में यह सोचो कि तुम्हारे कष्ट सहने से जीवों का मंगल होगा ।

विष्णु०—नहीं जीत सकी, नहीं जीत सकी । निद्रा ने अचेतन कर दिया । तुमको हृदय से लगाकर और हाथों से बाँधकर सोऊँगी ।



(निमाई का दृढ़ आलिंगन कर पर्यंक पर गिरकर सो जाना, कुछ समय के अनन्तर निमाई का धीरे धीरे उठना, अपनी बगली तकिया को विष्णुप्रिया के पैरों के बीच और माथे की तकिया को विष्णुप्रिया देवी के गोदी के निकट रखना, इसके पश्चात् सोने का हार उतारकर रखना और महीन कपड़ा उतारकर मोटा मलीन और छोटा कपड़ा पहिरना। फिर प्रिया जी के कपाल का चुंबन कर, दिया बुझाकर और द्वार खोलकर बाहर निकल जाना)

विष्णु—(चमककर उठ बैठना) हे प्रभु ! (स्वामी को बगल में न देखकर पलंग पर हाथ से देखना) कहो तुम कहाँ गए ? तुम क्या बाहर गए हो। द्वार तो खुला दिखलाता है। (घर के बाहर आकर) आँय यहाँ भी तो नहीं हैं, तब कहाँ गए ? (फिर भीतर आकर दीपक बालना) अरे यह गले का हार यहाँ पड़ा है। अच्छी धोती भी पड़ी है, दूसरी धोती पहिरी है। कहाँ गए ! अरे माँ ! उन्होंने तो पहले ही कहा था कि घर छोड़ेंगे। अच्छा स्मरण आया और अभी ही न उन्होंने कहा था कि हम अभी जायँगे। तब निश्चय ही हमको वह छोड़ गए। हा कृष्ण ! दुःखिनी के बंधु। हमें क्या हो गया था। निश्चय ही वह चले गए। तभी इतना मेरा आदर हुआ था। अब हम समझे कि जन्म भर के लिए त्यागने के दिन सुख की एक रात्रि दिखलाकर हमें इतने आनन्द में डुबोया था। हमारी ओर वह

जिस प्रकार देखते थे वह अब मुझे स्मरण आता है। वह देखना नहीं था, गुप्त रोना था। आँख में तो हँसी थी पर हृदय रोता था।

(धीरे धीरे शची के शयन घर के द्वार पर जाना और द्वार को धक्का देना)

मां उठो, उठो, मां।

शची—(द्वार खोलकर) क्या बहू ! निमाई अच्छी तरह से तो हैं ?

विष्णु०—हम सोई थीं, जागी तो देखा वह नहीं हैं। जो धोती पहिरे थे वह रखी है और गले का हार भी पड़ा है।

शची—(जल्दी से दिया बालकर विष्णुप्रिया के साथ बाहर आना) अरे यह बाहर का द्वार भी खुला है। निमाई ! ओ निमाई ! तुम कहाँ गए ? हे निमाई ! घर पर लौट आओ। निमाई, हे निमाई, अरे बेटा ! अब हम तुमको संकीर्तन करने में बाधा नहीं देंगी (विष्णु-प्रिया से) बहू, तुम्हारा राजपथ में जाना उचित नहीं, हम बाहर द्वार पर बैठते हैं तुम भीतर जाओ। (विष्णु-प्रिया का भीतर जाना) ईशान ! इधर आओ। हमारा जर्जर शरीर गिरा पड़ता है। (ईशान के सहारे बैठना) हे ईशान ! (संकेत द्वारा दिखलाना कि निमाई चल गए)

(श्रीवास का प्रवेश)

श्रीवास—मां, बाहर क्यों बैठी हो ?

(शची का संकेत द्वारा बतलाना कि निमाई चले गए। अन्य भक्तों का प्रवेश)

निताई—बात क्या है ?

शची—अरे भाइयो ! हम कुछ नहीं जानते। हमारा घर धन धान्य से परिपूर्ण है, तुम लोग सब कोई उसको आपस में बाँट लो। हम गंगा में प्रवेश करती हैं, तुम लोग निषेध मत करना। निमाई चले ही गए।

श्रीवास—घबड़ाती क्यों हो ? यह कैसे समझा कि वह एक बार ही घर छोड़कर चले गए ? शांत होइए, हम लोग आपस में परामर्श करते हैं। (नित्यानन्द से) आइए हम लोग कुछ दूर चलें। (दूर जाना) श्रीपाद, आप क्या कहते हैं ?

निताई—क्या कहें जो होना था सो हो गया। हमको ज्ञात होता है कि प्रभु ने गृह त्याग कर दिया।

श्रीवास—हम भी यही समझते हैं। हम लोगों को भी अब संसार को जलाञ्जलि देकर प्रभु का अनुगामी होना उचित है। तब भी एक बार खोज करना आवश्यक है। पृथ्वी पर जहाँ जहाँ सन्यासियों का स्थान है वहाँ वहाँ पता लगाना चाहिए। हमलोग स्थान बाँट लें। प्रत्येक स्थान पर चार पाँच आदमी प्रभु के अन्वेषण के लिए जायँ।

निताई—किंतु, एक बार काटोया में खोज करना चाहिए। प्रभु ने हमसे एक दिन बात ही बात में कहा था कि वह काटोया में केशव भारती के निकट सन्यास ग्रहण करेंगे। हम कुछ अच्छे लोगों को लेकर वहां जाते हैं। चलो शची माता से कह दें।

(शची के निकट आना)

प्रभु कहाँ गए हैं यह हम अनुमान करते हैं कि हम जानते हैं। हम वहीं जाते हैं। हम आपके समीप यह प्रतिज्ञा करते हैं कि उनको यहाँ लाकर आपसे भेंट करा देंगे। मां, विष्णुप्रिया कहाँ है?

ईशान—वह उनके पर्यंक के नीचे पृथ्वी पर अचेतन पड़ी है।

निताई—हम प्रभु को लिवाने जाते हैं, यह उनसे कहिए।

इति तृतीय अंक।

चतुर्थ अंक

प्रथम गर्भांक

[स्थान—काटोया में गंगा का तीर]

(वटवृक्ष के नीचे केशव भारती ध्यान मग्न हैं, निमाई का प्रवेश)

निमाई— स्वामिन्, मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिए।

(साष्टांग प्रणाम)

भारती—(ध्यान के अनंतर) तुम कौन हो! (टकटकी लगाकर देखना) तुम कौन हो ? तुम मनुष्य हो या देवता ? तुम हमको प्रणाम करते हो किन्तु तुम्हारा तेज देखकर बोध होता है कि तुम मनुष्य नहीं हो। हमीको तुम्हें प्रणाम करना उचित है।

(ससंभ्रम उठना)

निमाई—(हाथ जोड़कर) स्वामिन्, हम सामान्य संसार-बद्ध जीव भवसागर में डूब रहे हैं। हमारा आप उद्धार करिए।

भारती—जैसा देखते हैं उससे तो यही बोध होता है कि तुम मनुष्य नहीं देवता हो। तुम्हीं हमारा उद्धार कर सकते हो।

निमाई—महाराज, ऐसी बात मत कहिए। हमको लोग

निमाई कहकर पुकारते हैं । नवद्वीप में घर है । आप पहले स्वीकार कर चुके हैं कि आप हमें सन्यास देंगे ।

भारती—ठीक है, हमको स्मरण हो गया । तुम्हीं श्री नवद्वीप के अवतार निमाई पंडित हो । गोलोक त्यागकर जीवोद्धार के निमित्त नादिया में उदय हुए हो । हमने तुम्हारे घर पर भिक्षा की थी और तुमको सन्यास देना स्वीकार किया था । किन्तु तुम क्यों सन्यास चाहते हो ? तुमको तो सन्यास से कुछ प्रयोजन नहीं है । जैसा देखते हैं उससे तो यही बोध होता है कि तुम सन्यासी की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ हो ।

निमाई—ठाकुर, हमने श्री कृष्ण को खो दिया हैं । उनको खोजने के लिए वृन्दावन जायँगे । (ऊपर देखकर) कृष्ण कृपामय ! हमको दर्शन दो । हमारा प्राण व्याकुल हो रहा है । तुम्हारे बिना यह जगत अंधकारमय प्रतीत होता है ।

भारती—तुम श्री कृष्ण को खोजने जाओगे यह सुनकर हँसी आती है । तुम्हीतो श्री कृष्ण हो ।

निमाई—(काँपकर) महाशय क्या कहते हैं ? ऐसी बात क्या कहनी चाहिए ?

भारती—तुम स्वयं श्री कृष्ण हो ! तुम्हारा जिस दिन नादिया में दर्शन किया था उसी दिन हमने यह बात समझ ली थी । आज भी वही देखते हैं । तुम्हारी यह क्या

लीला है ? तुम सन्यास लोगे, श्रीमती ने क्या फिर मान किया है ? कलियुग में क्या पुनः श्री कृष्णलीला का आरम्भ होगा ?

निमाई—ओह ! ओह ! एक तो हम श्रीकृष्ण के वियोग में स्वतः मर रहे हैं उसपर आप ऐसी ऐसी बातों को कहकर हमारे अंतःकरण को बेध रहे हैं । प्रभु, हमको अब और मत छलिए । हमको सन्यास दीजिए जिसमें हम वृन्दावन चले जाँय । कृष्ण ! हम आए, हम अभी आए । हम बंधन से छूटते ही एक दौड़ में तुम्हारे चरण में उपस्थित हो जायँगे ।

भारती—हम सब लोगों को तुम्हें प्रणाम करना उचित है । तुम हमको गुरु कहकर प्रणाम करोगे और तुम्हारी चरण-धूलि ग्रहण करने में जो सुख है उससे हमको वंचित करोगे । इतना ही क्या, तुम सबके पूज्य हो । तुमने हमको प्रणाम कर हमारा सर्वनाश किया । जाओ, हम तुमको सन्यास न दे सकेंगे ।

निमाई—आप स्वीकार कर चुके हैं कि सन्यास देंगे ।

भारती—हां ठीक है । किन्तु सन्यास का यह समय नहीं है, तुम्हारी अभी कच्ची अवस्था है, जब पचास वर्ष के होना तब आना ।

निमाई—स्वामी, मेरा प्राण बाहर निकल रहा है । आप कृपा कर हमको मुक्त कर दीजिए । आपने मुझे आज्ञा

दी थी । उसी आशा के भरोसे हम आपके शरण में आए हैं ।

भारती—हम जानते हैं कि तुम्हारी वृद्धा माता है, युवती स्त्री है, इन लोगों का वध कर तुम सन्यास लोगे । इस कार्य में हम तुम्हारी कुछ सहायता नहीं कर सकते ।

(ग्रामवासियों का धीरे धीरे आना)

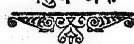
निमाई—ठाकुर, हमें क्या आपको पुनः स्मरण कराना होगा कि आप प्रतिश्रुत हैं ?

भारती—(रूक्ष भाव से) तुम बार बार हमसे यही कहते हो। हमने तुम से क्या यह कहा था कि इसी माघ के महीने में तुमको सन्यास देगें ?

(क्रमशः जनताकी वृद्धि)

निमाई—(रोते रोते) हमारा जाना नहीं हुआ । हा कृष्ण कृपामय ! हम क्या करें, हम कहाँ जाँय ? हम कहाँ जा कर तुमको पा सकते हैं ? हम वृन्दावन जाकर ही तुमको प्राप्त कर सकते थे ।

भारती—निमाई, सन्यास में कितना कष्ट होता है सो तुम नहीं जानते । हम लोगों का शरीर कठोर होने से सह सका । तुम्हारी देह मक्खन के सदृश कोमल है, तुम पृथ्वी पर कैसे शयन करोगे ? तुम थोड़े ही दिनों में रोग-ग्रस्त हो जाओगे । निमाई, तुम्हारे दर्शन मात्र से तुम्हारे प्रति हमारे हृदय में वात्सल्य प्रेम उदय हो गया



है। हम सन्यासी लोग समस्त कोमल मानसिक भावों को ध्वंस करने की चेष्टा करते हैं किन्तु, तुम सन्यास लोगे यह सुनकर हमारा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। देखो, ये लोग कौन आते हैं और क्या कहते हैं ? यह देखो निमाई, स्त्री लोग काँख में गगरी लिए खड़ी खड़ी एक दृष्टि से तुम्हीको देख रही हैं। कुलबधूगण भी घूंघट के भीतर से तुम्ही को देख रही हैं। नगर-वासी लोग सब प्रातः नित्यकर्म भूलकर तुम्हें चारों ओर से घेर कर खड़े हैं।

एक वृद्ध—बेटा, तुम कौन हो ? क्या तुम्हारी माता है ? तुम उसको मारकर क्या सन्यास लेने आए हो । बेटा, घर लौट जाओ। हमारी सौगन्ध है घर लौट जाओ। मातृ–वध मत करना।

एक स्त्री—सुनते हैं कि तुम्हारी स्त्री भी है। तुम तो सन्यासी होगे पर उसका क्या उपाय कर आये ? ऐसी निष्ठुरता मत करो।

(गदाधर, नित्यानन्द, मुकुन्द, और निमाई के मौसा चन्द्रशेखर का प्रवेश)

निताई—(चिल्लाकर) अरे यह प्रभु ! अरे यह प्रभु !

(द्रुत आगमन और प्रभु के सन्मुख पृथ्वी पर गिरना)

निमाई—आगए ? अच्छा हुआ। हम अभी ही मुक्त होंगे। मुकुन्द एक बार कृष्ण मंगल गीत गाओ हमारा कान

उपवासी हो रहा है, हमने कितने दिनों से कृष्ण-गुण-गान नहीं सुना है ।

मुकुन्द—जो आज्ञा, हम आरम्भ करते हैं ।

(नगरवासियों का खोल करताल लिए हुए प्रवेश)

यह रहस्य देखिए, प्रभु की कीर्तन सुनने की इच्छा होते ही खोल करताल उपस्थित हो गया ।

कीर्तन

हरि हरये नमो, कृष्णाय यादवाय नमः
नमो यादवाय, केशवाय, गोविन्दाय नमः
कहु गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूधन !

(सबका गाना और प्रभु का हाथ उठाकर नृत्य करना)

भारती—(उठकर निमाई को पकड़कर) निमाई शान्त हो । हमारी एक बात सुनो । तुम लोग क्यों नाचते गाते हो ?

मुकुन्द—हम लोग नाच गाकर भजन करते हैं । हमारे ठाकुर श्री कृष्ण ही हम लोगों के प्राणेश्वर हैं । उन्हींका नाम-स्मरण तथा गुण-गान करते समय क्या नाचें गावें न ?

भारती—अच्छा, निमाई, पृथ्वीपर लोग जो जो चाहते हैं-रूप, विद्या, भार्या, पद इत्यादि वह सब तुम्हारे पास है, उसको परित्याग कर तुम पथ के भिखारी हुए तब तुम्हें रोना उचित है । तुम नाचते क्यों हो ?

मुकुन्द—वह क्यों न नाचें, वह तो आनन्दमय हैं ।

भारती—ठीक है। सर्वस्व त्यागकर, वृद्धामाता और नव युवती स्त्री को छोड़कर सन्यास लेते समय भी नृत्य गान करना पृथ्वी पर आज पहली बार हुआ है। गाओ, गाओ, हमारा शरीर मारे आनन्द के शिथिल हो रहा है।

गीत

हरि हरये नमो, कृष्ण यादवाय नमः
नमो यादवाय, माधवाय, केशवाय नमः
गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन !

(प्रभु का नृत्य)

भारती—यह क्या हम भी अब नहीं बैठे रह सकते। हमारा भी चरण अब नाच उठता है।

(निमाई और भारती का गला पकड़कर नृत्य करना)

निताई—(दोनों को पकड़कर) आप लोग विश्राम करें।

भारती—(चैतन्य होकर) यह क्या किया ! क्या नाचते थे ! लोग क्या कहेंगे ? अरे यहाँ तो बहुत लोग हैं। जो हो, आज चित्त प्रसन्न हुआ। भला निमाई, तुम सन्यास क्यों चाहते हो, हम लोग भवसागर पार होने के लिए सन्यास लेते हैं पर तुम तो, देखते हैं कि स्वयं पार करने वाले हो। तुम्हें सन्यास से क्या प्रयोजन ?

निमाई—(चरण पर गिरकर रोते रोते) एक तो हम आपही

मर रहे हैं उस पर आप ऊपर से मेरी मिथ्या स्तुति कर मेरा बध मत करिए।

भारती—हम तुमको सन्यास देकर बध नहीं कर सकते। तुमसे तो हमने हार मानी, किन्तु तुम अपनी माता और स्त्री की सम्मति ले आओ। यह स्मरण रखो कि उन लोगों की स्वेच्छापूर्वक सम्मति चाहिए। तुम्हारा जो तेज है, उससे तुम्हारे कार्य में कोई बाधा नहीं डाल सकता। पर हम उन लोगों की हार्दिक सम्मति जानना चाहते हैं।

निमाई—स्वामिन्, उन लोगों ने तो आज्ञा दे दी है।

भारती—वह हो सकता है, कारण कि पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारे कार्य में विघ्न उपस्थित कर सके। तुम फिर जाओ और उन लोगों से पुनः सम्मति ले आओ।

निमाई—यह बड़ी कठोर आज्ञा है तिसपर भी हम इस आज्ञा का पालन करेंगे। हम उनकी सम्मति लेने जाते हैं।

(चलना)

भक्तगण—प्रभु, खड़े रहिए, हम लोग भी आते हैं।

(निमाई का खड़ा होना)

भारती—(आप ही आप) तुम जैसे ही जाओगे वैसे ही हम भी इस स्थान को छोड़कर भाग जाएँगे। हाय क्या, करते हैं? सरल बालक को ठगते हैं? और हम सन्या-

सी ? छिः ! (प्रकाश) निमाई, तुम लौट आओ, हम तुमको सन्यास देंगे ।

निमाई—स्वामिन्, हम जानते हैं कि आप दयामय हो । बोलो हरि बोलो ! (नृत्य)

एक नागरिक—(निमाई से) बाबा घर जाओ । तुमको देख कर मेरा हृदय रोता है ।

द्वि० ना०—एक बार तुम माँ और स्त्री का स्मरण करो । आहा, उन लोगों की क्या दशा होगी ?

निमाई—भाई लोग, तुम लोग आशीर्वाद दो कि हम अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्ण का पावें ।

एक पौढ़ा स्त्री—(चिल्लाकर रोते हुए) अरे भैया, क्या हुआ है ? बेटा घर जाओ, घर जाओ ! तुम्हारी माता अब तक हम समझते हैं कि मर गई होगी ।

दूसरी स्त्री—(घूँघट काढ़े हुए) अरे माँ, प्राण निकलता है । अरे तुम लोग उसको अच्छी तरह मना करो ।

भारती—कैसा आश्चर्य ! ये सब लोग कहाँ से चले आ रहे हैं ? ज्ञात होता है कि पृथ्वी फोड़कर लोग निकले आ रहे हैं । इतने लोग क्या काटोया नगर में थे ? हमारा तो चिरकाल का साधन ही नष्ट हुआ । हमको नाचना न चाहिए, सो नाचे ! इतने दिन के साधन पर माया मोह त्याग कर हृदय दृढ़ किया था पर आज स्त्रियों की तरह रोते हैं । कुछ हमी नहीं सभी रोते हैं । यह करुणा

रस का सागर मानों सहसा उमड़ पड़ा है। (भक्तगण के प्रति) आप लोग जानते हैं कि सन्यास के लिए दही, घी, दूध, मिठाई, कपड़ा, फूल, मिष्ठान्न, वस्त्र, माला तथा कोपीन वहिर्वास आदि सभी द्रव्य की आवश्यकता है और एक नाऊ भी चाहिए।

नितार्इ—यह देखिये, सब द्रव्य आपही आप चला आ रहा है।

(दहीं, मिठाई आदि लिए हुए लोगों का प्रवेश)

भारती—इन लोगों ने यह कैसे जाना कि इन सब द्रव्यों की अभी ही आवश्यकता है ?

नितार्इ—हमारे प्रभु में यही तो चमत्कार है। प्रभु सन्यास लेते हैं इससे जब सारा जगत रोता है तब सन्यास ग्रहण की सब सामग्री के आपही आ जाने में क्या आश्चर्य है ?

भारती—क्या, हरि नाऊ! तुम भी आ गए? अच्छा तुमको मुंडन करना होगा।

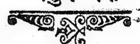
हरिदास—हमसे यह कार्य नहीं होगा।

भारती—क्यों ?

हरिदास—उस मस्तक को कौन हाथ लगावेगा! देखिए कैसा केश है! ऐसा बाल हमने इस जन्म में नहीं देखा। ऐसे बाल हमसे नहीं मूड़े जा सकते।

निमाई—हरिदास हमारा मुंडन कर दो, हम वृन्दावन जायँगे। श्रीकृष्ण तुम्हारा भला करेंगे।

हरिदास—जो हो, हमको वह भलाई नहीं चाहिए। इस नगर



में अनेक नाई हैं किसीको बुला लीजिए। हम उस मस्तक में हाथ नहीं लगा सकते।

निमाई—क्यों, तुमको क्या आपत्ति है? नाऊ, हमारा हृदय फटा जाता है, हमारा मुंडन कर छुट्टी दो।

हरि०—हमारी छाती भी फटी जाती है। इन बालों को क्या हम काटेंगे? तुमको क्या संसार के बाहर निकालेंगे? हमसे यह न होगा। यदि हम मर जायँ, हमारा पुत्र मर जाय और हम नरक में भी जायँ तब भी हम यह काम नहीं कर सकेंगे। हम बड़े कठोर आदमी हैं पर आज हमारा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

(रोना)

निमाई—(नाऊ के शरीर पर हाथ रखकर) शांत हो, कृपा कर हमारा छुटकारा कर दो।

हरि०—हम समझते हैं कि तुम ऐसे वैसे नहीं हो। हम लोग जिस ठाकुर की पूजा करते हैं तुम वही हो और हमको बध करने के लिए पृथ्वी पर आए हो! अच्छा ठाकुर हम नाऊ हैं, बाल बनाते हैं और पैर का नख भी काटते हैं। भला, तुम्हारे माथे का बाल बनाकर हम फिर उस हाथ से किसका पैर छूएँगे, जिसका पैर छूएँगे उसका सर्वनाश हो जायगा और हमारा भी सर्वनाश होगा।

निमाई—इसका विचार मत करो। हमारे वरदान से तुमको अब नाऊ का कार्य नहीं करना होगा। तुम हलवाई

हो जाओगे। तुम्हारा इहलोक और परलोक दोनों में मंगल होगा।

हरि०—सरकार, मंगल और अमंगल तो हम कुछ नहीं समझते पर आपकी बात भी नहीं टाल सकते। जो भगवान सब से बड़े है आप क्या वही नहीं हैं? हम अज्ञानता वश इतनी देर तक आप से उत्तर प्रत्युत्तर करते रहे। (सबसे) हे महाशयो! आप लोग रोते हैं, हम भी रोते हैं। हमारे मुंडन करने पर आप लोग क्रोध करेंगे किन्तु हम अब प्रभु की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकते। आइए सरकार, बैठिए, बाल बनावें।

एक युवक—ठहरो हरि, इतनी शीघ्रता मत करो। हे भारती गोसाईं, तुम सोने की पुतली के सदृश इस नवयुवक को घर से निकालते हो इससे क्या तुम्हें कष्ट नहीं होता? तुम समझते हो कि एक अच्छा असामी हाथ चढ़ा है।

भारती--नहीं भैया, हमारी इच्छा नहीं है। पर वह हमारे तुम्हारे ऐसे सामान्य मनुष्य नहीं हैं, उनकी बात टालना हमारे सामर्थ्य के बाहर है।

द्वि० युवक—नहीं नहीं, इस कोरे शिष्टाचार से नहीं होगा। आओ सब कोई मिलकर इस सन्यासी को मार डालें जिससे सब टंटा दूर हो जाय।

भारती--(हाथ जोड़कर) बहुत अच्छा, हमको मार डालो तो हम भी बच जाएँगे ।

युवक—क्यों, तुम उनसे क्यों नहीं कहते कि हम तुमको सन्यास नहीं दे सकते, तुम घर जाओ ?

भारती—कहा था पर वे नहीं गए । उनकी बात न मानने की हममें शक्ति नहीं है । तुम लोग क्यों नहीं कहते ?

वृद्ध--अच्छा, हम बूढ़े हैं, हमारी बात नहीं काट सकते, हम कहते हैं । हे नये अध्यापक, तुम घर जाओ । तुम्हारी माता और स्त्री अब तक स्यात् जीवित हों या न हों ?

निमाई—(हाथ जोड़कर) महाशय, हम श्रीकृष्ण के खोज में जाते हैं, उसमें बाधा मत दीजिए । श्रीकृष्ण को खोजना ही जीव का प्रधान कर्तव्य है ।

वृद्ध—ठीक है, तुम अच्छा करते हो । हम लोगों को भी तुम्हारा अनुगामी होना उचित है किन्तु हम लोग माया मुग्ध जीव ऐसा नहीं कर सकते । तुम स्वच्छन्दता से सन्यास लेकर जीवों का मंगल करो ।

वृद्धा—तुम हटो, तुम तो उसे उलटा उत्साह देते हो । हम कहेंगे । हे बेटा, तुम्हारी माता अब तक मर गई होगी । क्या मातृवध करने से धर्म होता है ? बेटा घर लौट जाओ तुम हमारे या इन लोगों के कोई नहीं हो तब भी तुम्हारे लिये सब लोग धैर्य छोड़कर रोते

हैं और तुम्हारी माता की क्या दशा होगी उसका भी एक बार बिचार करके देखो ।

निमाई—माँ, हम कृष्ण का भजन करें सो अच्छा है अथवा संसार में रह कर विषयों में लिप्त रहें वह अच्छा है। हमारा यदि भला होगा तो हमारी माता का भी अवश्य भला होगा । हमारी माता यदि शत्रु होगी तो वाधा देगी और यदि हितैषी होगी तो इस शुभ कार्य में सहायता देगी ।

वृद्धा—यह सच है, हम रोते हैं, किन्तु तुमको देखकर और तुम्हारे कार्य को देखकर हम लोगों का मन शुद्ध हो गया । तुम अच्छा करते हो । तुम स्वच्छन्दता से सन्यास लो, संसार तो झूठा है, आँखों के बंद होते ही संसार क्या ?

निमाई—हे हरि, हमारा बाल बनाओ, हम वृन्दावन जायँ ।

(नाऊ का निमाई के आगे बैठना)

नाऊ—अरे ! अरे ! अब नहीं सहा जाता । (पृथ्वी पर गिरकर छटपटाना और सबका रोना)

निमाई—(नाऊ के शरीर पर हाथ रखकर) उठो हरिदास, शान्त हो !

नाऊ—(उठकर हँसते हुए) आज हमें कैसा आनन्द ! आज ठाकुर के नाऊ हुए ।

(टेढ़े होकर नाचते हुए पीछे हटना और फिर निमाई के आगे आना)

निमाई—हरि, शान्त होकर बैठो और हमें छुटकारा दो (नाऊ का बैठना और क्षौर करने का उद्योग) हरिदास, ठहरो, हम एक बार नृत्य करलें।

(उठकर नाचना)

भारती—सर्वस्व त्याग कर सन्यास के समय आनन्द से नृत्य केवल श्रीकृष्ण ही स्वयं कर सकते हैं।

नाऊ—आप ने ठीक कहा। हमारा भी इस समय मन स्थिर नहीं है, क्षौर करते समय सिर में छुरा लगने से रक्त निकलेगा इससे थोड़ा नृत्य कर चित्त शांत करलें, हमारा हाथ काँपता है।

(नाऊ का नृत्य)

निमाई—हरिदास, इधर आओ (हरिदास का हाथ पकड़ कर नृत्य करना)

भारती—निमाई शांत हो। सुनो, लग्न बीतती है।

(निमाई का बैठना, नाऊ का मुंडन करने को उद्यत होना, हाथ काँपना, फिर स्थिर होकर क्षौर करना और सबका ऊँचे स्वर से रोना)

भारती—निमाई, गंगा-स्नान कर आओ।

(निमाई का गमन, भारती को छोड़कर निमाई के पीछे सबका जाना और नाऊ का छुरा आदि माथे पर रखकर नाचते हुए जाना)

नाऊ—(छुरा आदि गंगा में फेंककर) आज से मेरे क्षौरकार्य की इतिश्री हो गई। अब इनकी आवश्यकता नहीं।

निमाई—(स्नान करके आकर भारती से) कौपीन देने की आज्ञा हो (भारती का कौपीन और वहिर्वास देना और निमाई का कौपीन माथे लगाकर उपस्थित जनता के प्रति) हे मेरे सुहृदगण ! हे माता ! हे पिता ! तुम लोग सब कोई हमको आज्ञा दो कि हम कौपीन पहिर कर कृष्ण के दास हों । (सबका रोना और हरिध्वनि) हे भाइयो, पिता, माता ! आप लोग आशीर्वाद दीजिए कि व्रज जाकर कृष्ण को पावें । (रोना और हरिध्वनि)

भारती—निमाई, हमारे बाईं ओर इस आसन पर बैठो ।

निमाई—(बैठकर) स्वामिन्, हमने स्वप्न में सन्यास का एक मन्त्र पाया है । सुनिए, वह कैसा है ।

(भारती के कान में मन्त्र कहना)

भारती—(आश्चर्य से) इस महामन्त्र को तुमने कहाँ से पाया ? हम लोगों का मन्त्र तो प्रकट हो नहीं सकता । अच्छा समझे, तुमतो अंतर्यामी हो, तुम सबके हृदय में बास ही करते हो, तुम से क्या छिपा हुआ है ?

निमाई०—प्रभु, फिर आप ऐसी बात कहकर हमें क्यों अपराधी बनाते हैं ?

भारती—समझे, जीव के पास क्यों मन्त्र लोगे,इसीसे तुमने मुझे दीक्षा देकर शिष्य बना लिया । अहा, दयामय ! तुम्ही तो सबके गुरु हो ।

निमाई—अब कृपाकर मन्त्र दीजिए ।

(कान में मन्त्र देना)

भारती--अब तुम्हारा नामकरण करना होगा । तुम्हारे उपयुक्त क्या नाम सोचें (निमाई की छाती पर हाथ रखकर) तुमने सब के हृदय में श्रीकृष्ण का नाम चेतन कराया है इससे तुम्हारा नाम होगा "श्रीकृष्ण चैतन्य" ।

पास वाले--क्या नाम, क्या नाम ?

भारती—श्रीकृष्ण चैतन्य ।

सब--जय, श्रीकृष्ण चैतन्य की जय !

(हरिध्वनि)

भारती—निमाई, दण्ड कमण्डलु लो । (निमाई का दंड कमंडलु हाथ में लेकर खड़े होना और सबका प्रणाम करना ।)

सब--जय श्रीकृष्ण चैतन्य ! जय पतितपावन ! जय दीनदयालु !

निमाई--(सबके प्रति) हे बंधुगण, हे माता और पिता गण ! आशीर्वाद दीजिए कि हम वृन्दावन जाकर श्री कृष्ण को पावें । (हरिध्वनि) हम इस समय एक भिक्षुक सन्यासी हैं, आप लोगों के निकट मेरी एक भिक्षा है । हम कंगाल हैं क्या हमको भिक्षा न दोगे ?

सब—देंगे, देंगे ।

निमाई—हमारी यही भिक्षा है (हाथ जोड़कर) आप

लोग उसी मंगलमय श्रीकृष्ण का भजन करें । हम हाथ जोड़कर यही भिक्षा चाहते हैं । अब हम वृन्दावन चलते हैं । हे कृष्ण, हम अभी आए (दंड कमंडलु फेंककर चलना)

भारती—कृष्ण चैतन्य, खड़े रहो, खड़े रहो । अपना दंड कमंडलु लेते जाओ । हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे ।

चन्द्रशेखर—(दोनो हाथों से मार्ग रोककर) एक बार हम लोगों की ओर देखिए ।

निमाई—(चन्द्रशेखर को देखकर) कौन बाबा ? बैठो । (बैठना) बाबा, हम वृन्दावन जाते थे, कृष्ण हमको बुलाते थे । हमारी माता रह गई हैं । हे बन्धुगण, तुम लोग मेरी माता से कह देना कि वह हमें क्षमा करेंगी । उन्होंने मेरी जो सेवा की है उस ऋण को हम एक तिल भर भी नहीं चुका सकते, माँ मेरा अपराध न समझेंगी, क्योंकि वह माता हैं और हम उनकी सन्तान हैं । मां से कहना कि लोगों को जैसे बिधवा कन्यायें भी होती हैं हम उनकी वैसी ही विधवा कन्या हैं । लोगों को अन्धे बाहिरे लूले सन्तान होते हैं हम उसी प्रकार के उनके एक निरर्थक सन्तान हैं । हमसे उनका प्रतिपालन नहीं हुआ । माता को मेरा यह प्रणाम कहना । (प्रणाम) हम चलते हैं । कृष्ण, हम यह चले, आए, आए, (कहते कहते दौड़ना)

निताई—खड़े रहो, खड़े रहो, हम आते हैं।

मुकुन्द—खड़े रहो, हम भी आते हैं।

कुछ लोग—ठहरो, ठहरो, नवीन सन्यासी।

अन्य लोग—अब संसार में नहीं फँसेंगे। खड़े रहो, खड़े रहो।

(चिल्लाकर "खड़े रहो" कहते कहते सबका पीछे पीछे दौड़ना)



द्वितीय गर्भाङ्क

[स्थान—शची का घर]

(शची ईशान के सहारे बैठी है, विष्णुप्रिया सोई है और उसकी सखी पास बैठी है)

श्रीवास—माता आज दो दिन का समय बीत गया पर आप ने अभी मुख में जल तक नहीं डाला। आप जब तक जल न पीएँगी तब तक बहू भी कुछ न खायगी। इस बालिका का मुख देखकर आप कुछ भोजन करें। प्रभु भाव के वश हैं, वे कहाँ हैं यह कौन जान सकता है ? आप इतनी क्यों चिंतित होती हैं ? जानती तो हैं, कि वह कौन है ? उनके निमित्त क्या डर है ? माता आप शांत हों।

शची—पंडित, समय बहुत बीत गया। देखो कृष्ण को प्रातः काल ही गैया चराने के लिए भेजा था। उससे कह दिया था कि भैया हम तुम्हारे बिना नहीं रह सकतीं। शीघ्रही आना। देखो कृष्ण बड़ा निठुर है। एक दम खेल में ही उन्मत्त रहता है। उसको इसका स्मरण नहीं है कि हम बैठी उसका मार्ग देख रही होंगी।

श्रीवास—(स्वगत) सर्वनाश ! माता तो पागल हो गई हैं।

क्या पागल नहीं हैं ? (प्रकाश) माता, आपके पैर पड़ते हैं आप स्नान करिए।

(शची का पैर पकड़ना)

शची—हम स्नान करें ? कृष्ण जब तक घर नहीं आता तब तक क्या हम कुछ कर सकती हैं। पहले वह आवे, तब उसे ऊखल में बाँधूँगी, और जब वह माँ माँ कह कर रोने लगेगा तब उसे छोड़कर स्नान कराऊँगी और मक्खन खिलाऊँगी। मुख पर लाल तिलक लगाकर शृंगार कर तब हम स्नान करेंगी। (चिल्लाकर) पंडित, देखो तो कृष्ण आता है कि नहीं ?

श्रीवास—(विष्णुप्रिया के निकट जाकर) देवी, तुम उठो और माता को शांत करो। तुम तो जानती हो कि हम लोगों के प्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं। जीवों के दुःख दूर करने को इस पृथ्वी पर आए हैं। तुम और शची माता पागलों की तरह प्रलाप कर रही हो। प्रभु के घर पर न होने से माता जी की रक्षा का कुल भार आपही के ऊपर है। उठो, देवी उठो, जीवों के दुःख की ओर देखकर अपने दुःख को कम करो। हम बाहर जाते हैं, आप माता जी को उठाइए। उनको शांत कीजिए और स्नान कराके कुछ भोजन भी कराइए। (ऊपर देखकर) प्रभु ! हमारे जीवन-सर्वस्व, तुम जीवों के दुःख के लिए व्याकुल हो रहे हो पर एक ओर अपनी

माता की दशा को भी देखो । (विष्णुप्रिया से) देवी उठो, हम बाहर खड़े हैं, आप माता को शांत कीजिए ।

सखी—देवी, उठो माता को शांत करो । तुम्हारे अतिरिक्त कोई यह नहीं कर सकता ।

विष्णु०—(उठकर) सखी, क्या वह कृष्ण नहीं हैं ? यदि ऐसा है तब हम क्या राधा हैं ?

सखी—इसमें क्या सन्देह है ?

विष्णु०—तब कृष्ण मथुरा को गए हैं न ?

सखी—हाँ, कृष्ण मथुरा गए हैं और फिर आवेंगे ।

विष्णु०—तब हम क्या कृष्ण–विरहिणी हैं ? सखी, तुम राधा के विरह वर्णन की एक गीत गाओ, देखें हमारा कैसा भाव होता है । तुम गीत गाओ और हम उसे सुनकर अपनी विरह–यंत्रणा कम करें ।

सखी—अच्छा सुनो—

गीत

प्राननाथ को पथ अवलोकत आँखिन जोति गँवाई ।
प्रान पखेरू तलफि तलफिके तजन चहत अब भाई ॥
जानि बूझि जौ देहिं मोहिं दुःख तौ नहिं कछुक बसाई।
मो सम प्रेम करति ह्वैहैं बहु सदा हृदय लौ लाई ॥
मरैं जिएँ हम, क्षति उनको कहँ, कबहुँक खोज कराई।
यह मन समुझतहू नहिं मानत आँखिन हैं झरि लाई ॥
मोको दियौ दुःख प्रभु जितनो तितौ प्रीति अधिकाई ।
उन बिनु और कौन है मेरो, मेरे सर्वस गौर निमाई ॥

विष्णु०—(शची का गला पकड़कर रोना) माता शान्त हो, यह क्या तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे पुत्र श्री कृष्ण हैं ?

शची—(अट्टहास करके) कृष्ण, क्या आए हो ? आज तुमको बाँधेंगे। अरे निष्ठुर, हम तुझे एक क्षण भी न देखने से इतने व्याकुल होते हैं और तू माता के प्रति इतना निर्दय रहता है ? खड़े रहो, हम एक डोरी लेकर आते हैं।

विष्णु०—(रोकर) मां, क्या पागल हो गई हो

(ऊपर देखकर)

दयामय प्रभु, माता पर दया करो, हे दीनदयालु, तुम मुझे जितना दुःख देना चाहते हो दो, पर मेरी वृद्धा माता कैसे कष्ट सहन कर सकेंगी ? प्रभु, मां को शान्त करो।

शची—(चैतन्य होकर) कौन, बहू विष्णुप्रिया ? बहू, निमाई कहाँ है ? अरे बहू, मेरे निमाई को तुमने क्यों छोड़ दिया ?

(सास और बहू का गला पकड़कर रोना)

अरे निमाई, तू ही न कृष्ण है ? हे कृपामय कृष्ण, हम अबला तुम्हारे भाव को क्या समझें ?

(शची का मूर्छित होना)

विष्णु०—(शची को पकड़कर) सखी, शीघ्र जल ला, मुख पर डालें। माँ मूर्छित हो गई। देखो दाँत बैठ गए हैं।

तृतीय गर्भाङ्क

[स्थान–वट वृक्ष के नीचे पेड़ के सहारे निमाई बैठे हैं]

(केवल कौपीन पहिरे हैं, वहिर्वास नहीं है)

निमाई—(बाँए हाथ पर सिर रखे हुए स्त्रियों के समान चिल्लाकर रोते हुए) हे कृष्ण, एक बार हमको दर्शन दो। केवल एकही बार, फिर तुम सौ वर्ष तक हमको दर्शन मत देना। हमारा प्राण निकलता है। हमें छोड़ कर चले गए। हे नाथ, तुम तो दयानिधि हो, हम पर भी दया करो। हम बड़े दुःखी हैं क्योंकि तुमसे बिछुड़े हुए हैं। कृष्ण, तुम्हारे अतिरिक्त हमारा और कौन है, तुम्हारे विना संसार अंधकारमय है। (निताई, चन्द्रशेखर, मुकुन्द और गोविन्द का प्रवेश) अरे प्राण गया, प्राण गया।

(पृथ्वी पर लोटना)

निताई--अरे यहीं प्रभु हैं। (भक्तगण का निमाई को पकड़कर बैठाना और उनका आँख बन्द किए ही सहारे से बैठ रहना) प्रभु कल हम लोगों को छोड़कर कहाँ चले गए थे ? सारी रात्रि खोजते फिरे थे, तुम्हारा रोना सुन कर इधर आए।

चन्द्रशेखर---इस प्रकार का करुण क्रन्दन त्रैलोक्य में कोई

नहीं कर सकता। हाय हाय, नंगे शरीर ऐसी शीत की रात बिताई।

निताई--हे जीव! एक बार देख जाओ। देखो, तुम्हारे लिए हमारे जीवन-सर्वस्व ने जो कष्ट उठाया है सो देखो। प्रभु तुम तो जीवों का उद्धार नहीं करते, जीवों का वध करते हो। इस प्रकार का दृश्य देखकर कौन बच सकता है? हम लोग कठोर हृदय के होने से बचे हुए हैं। अच्छा हुआ। जो पूर्ण ब्रह्म सनातन हैं वह अब कौपीन पहिरकर कंगाल के वेश में द्वार द्वार जीवों के निमित्त भिक्षा करते घूमेंगे तब देखें दुष्ट जीव क्या करते हैं।

गीत

आय सबै मिलि कीर्तन कीजै, हे पुरवासी लोग!
तुम सब समुझि लेहु मन माहीं जनम वृथा खोअत जग माहीं
माया वश है लोग॥
तुम सब देखहु सन्मुख भाई ब्रह्म सनातन वेद जो गाई
आय खड़ो है सोइ।
तुम सब कहँ गोलोक लैन को आयो है इत जीवन जी को
गौर महाप्रभु सोइ॥

(दो ग्वालों का प्रवेश और प्रभु को देखकर हरिध्वनि करना, निमाई का हरिध्वनि सुनकर आँख खोलना)

निताई—(प्रभु का मुख देखकर) प्रभु ने आँख खोला है परंतु अब भी वाह्यज्ञान नहीं हुआ । देखते हो, ग्वाला लोग क्या जानें पर प्रभु के दर्शन मात्र से उनके मुख से भी हरि हरि निकल पड़ा । (निमाई का उठ कर बैठना और ग्वालों का फिर से हरिध्वनि करना)

निमाई—(उठकर खड़े होना) किसने हरिनाम लिया ? (इधर उधर देखना)

निताई—(मुकुन्द से) आज प्रभु और हमलोगों को चार दिन से उपवास है । इस चार दिन में किसी ने न खाया, न पीया और न सोए । प्रभु एक बार ही चारों दिन अचेतन रहे, कितना पुकारा, कितनी चेष्टा की पर हमलोग उनको चैतन्य नहीं कर सके । भूख से, प्यास से, न सोने से, पथश्रम से, शची और विष्णुप्रिया के विरह से, किसी से भी जिसको चेतन नहीं करासके थे, देखो वे कान में हरिनाम के प्रवेश करते ही सजीव से हो उठे । ऐसी शक्ति मनुष्य में होना संभव नहीं है ।

(ग्वालों का हरिध्वनि करना)

निमाई—(इधर उधर दृष्टिपात करते हुए ग्वालों को देखकर) भाई तुम लोग कौन हो ? तुम लोगों ने यह मधुर नाम कहाँ से पाया ? तुम लोग व्रज के ग्वालबाल मालूम होते हो, नहीं तो यह दुर्लभ नाम कहाँ से पाते ? भइया (ग्वालों के माथे पर हाथ रखकर)

हमारे कान अभी तक प्यासे थे, तुम लोगों ने अमृत पिला दिया। भइया, तुम लोग यही नाम फिर कहो। (ग्वालों का हरिध्वनि) भाई हम मरगए थे, तुम लोगों के मधुर मुख से हरिनाम सुनकर प्राण फिर लौट आए। कृष्ण तुम लोगों का मंगल करें। फिर से एक बार कहो। (हरिध्वनि) भइया, एक और उपकार करो, हम परदेशी हैं मार्ग जानते नहीं। श्री वृन्दावन का कौन मार्ग है सो कृपाकर बतला दो।

(निताई का पीछे से ग्वालों को शांतिपुर का मार्ग बतलाने को संकेत करना, ग्वालों का संकेतानुसार वही रास्ता दिखलाना और निमाई का नीचे मुख करके धीरे धीरे उसी ओर जाना)

निताई—(चन्द्रशेखर से) हम प्रभु को भुलाकर शांतिपुर ले जाएँगे। आप जल्दी से शांतिपुर जाइए। वहाँ जाकर श्री अद्वैत से कहिए कि वह इस पार नौका लाकर घाट पर हम लोगों की प्रतीक्षा करें। (चन्द्र-शेखर का छिपकर और कपड़े से मुँह ढाँपकर शांतिपुर की ओर जाना)

निमाई—(खड़े होकर चिंता करना) अवन्ती नगर का ब्राह्मण बड़ा साधु था। उसने सर्वस्व त्याग कर श्रीवृन्दावन जाकर श्रीकृष्ण का भजन किया था। हम भी उसी पथ का अवलम्बन करेंगे। साधु! साधु! हे ब्राह्मण, तुम्ही धन्य हो!

निताई —(साथियों से) प्रभु को अब कुछ ज्ञान हुआ है। अब मालूम पड़ता है कि हमको पहिचान सकेंगे ।

(मार्ग रोककर खड़े होना)

निमाई—(मुख ऊपर कर) आप कौन हैं ? आपको तो कुछ कुछ पहिचानते हैं। (कुछ ठहरकर) क्या श्रीपाद नित्यानन्द ?

निताई—हां, मैं वही अधम हूँ ।

निमाई—हम वृंदावन जाते थे, तुम यहां किस तरह से आ पहुँचे ?

निताई—प्रभु, तुमको वृंदावन जाते हुए सुनकर हम भी बहुत शीघ्र आकर आपके साथ हो लिए ।

निमाई—अच्छा, अच्छा, बड़े आनन्द की बात है, अब दोनों आदमी श्री वृंदावन जाकर मुकुंद का भजन करेंगे ।

(कुछ ठहरकर)

श्रीपाद, श्रीकृष्ण तो मुझे दर्शन देंगे ?

नितई—(स्वगत) अरे सर्वनाश हुआ । ऐसी बात उठाने से प्रभु फिर अचेतन हो जायेंगे । (प्रकाश) प्रभु, वह सब बात अभी रहने दीजिए । भूख और प्यास से मर रहे हैं, पहले भूख प्यास को दूर करें । तुमको क्या ? तुम प्रेमामृत पानकर चिर दिन तक रह सकते हो पर हम लोग तो क्षुद्र जीव हैं ।

निमाई—वृंदावन जाकर क्षुधा पिपासा दूर करेंगे। अब वृंदावन कितनी दूर है?

निताई—(स्वगत) प्रभु के मन का भाव यही है कि मानो वृन्दावन के निकट आ पहुँचे हैं, नहीं तो 'अब कितनी दूर है' क्यों पूछते? सामने सुरधुनी है, उसको क्यों न यमुना कहकर समझा दें? उस पार शांतिपुर है, इस पार श्री अद्वैत नौका सहित अवश्य मिलेंगे। (प्रकाश) वृंदावन तो आ गए, आज ही वृंदावन पहुँचेंगे।

निमाई—श्रीपाद क्या कहते हो? क्या हमारे भाग्य में वृंदावन का दर्शन है?

निताई—हम तुमको यहीं से वृंदावन दिखलाते हैं। वह एक नदी दिखाई पड़ती है, देखते न हैं? और उसके तीर पर एक वट वृक्ष भी न दिखालाई पड़ता है?

निमाई—(देखकर) हां देखते हैं।

निताई—वही बट वृक्ष वंशीवट है और नदी श्री यमुना।

निमाई—यमुना! यमुना! यह यमुना! तब फिर क्या, अभी श्री कृष्ण को देखेंगे। लो हम चले।

(एक सांस से दौड़ना)

मुकुन्द—प्रभु को ठगते हो, वह क्रोध करेंगे।

निताई—इस वंचना से यदि हमको नरक की प्राप्ति हो तो वह भी मुझे स्वीकार है। प्रभु ने पाँच दिन हुए

मुख में एक विन्दु जल भी नहीं डाला, तब भी उनका तेज और दौड़ने की गति देखो। चलो हम लोग भी जहां तक हो सके दौड़ें।

(सबका प्रस्थान)



पंचम अंक

प्रथम गर्भांक

(गंगा के तट पर एक नाव खड़ी है, यमुना के भ्रम से निमाई गंगा में स्नान कर एक ओर खड़े हैं और अद्वैत एक ओर)

निमाई—(स्वर के साथ यमुना-स्तोत्र पढ़ना)

चिदानन्द भानोः सदानन्द सूनोःपरप्रेमपात्री द्रव ब्रह्मगात्री।
अघानां लवित्रीजगत् क्षेमधात्री पवित्री क्रियान्नो वपुर्मित्र पुत्री॥

(नित्यानन्द आदि का प्रवेश)

अद्वैत—ये हमारे नए नागर प्रभु की क्या दशा हुई ?

(ऊँचे स्वर से रोना)

निमाई—(आँख खोलकर अद्वैत को देखकर) आप कौन ? क्या श्री अद्वैत आचार्य ?

निताई—हाँ प्रभु, हमी हैं।

निमाई—क्या आनन्द ! अब वृंदावन में तीनों आदमी स्वेच्छापूर्वक मुकुंद का भजन करेंगे। (कुछ ठहर कर) किंतु हम क्या स्वप्न देख रहे हैं ? श्री आचार्य तुम हमारे पूर्व ही कैसे आ गए ? हमारी समझ में नहीं आता, हम वृंदावन जाते थे, मार्ग में श्री नित्यानन्द मिले, तत्पश्चात् यमुना में स्नान करने के बाद देखते हैं कि तुम यहां खड़े हो। हमारी समझ में कुछ भी नहीं आता।(कुछ सोचकर) समझे, न यह यमुना

है, न यह वृन्दावन। यह गंगा है और उस पार शान्तिपुर है। भला श्रीपाद नित्यानन्द, यह क्या अच्छा काम किया? तुम कृपाकर हमको छोटा भाई मानते हो, तुमने भाई होकर मुझे वृंदावन नहीं जाने दिया और भुलाकर शान्तिपुर ले आए। सब कोई वृंदावन गए केवल हमी न जा सके। (रोना) हमने श्री कृष्ण के प्राप्त्यर्थ सन्यास लिया पर उन्हें नहीं पा सके।

अद्वैत—प्रभु, आपको भला कौन भुला सकता है? आप तो त्रिजगत के प्राण और अन्तर्यामी हो। आप तो निज इच्छा से आए हो। कारण क्या आप नहीं जानते? आपके कोटि कोटि भक्त आप के लिए प्राण दे रहे हैं? एक बार उनको दर्शन देकर प्राणदान दीजिए। प्रभु, श्रीपाद ने भी मिथ्या बात नहीं कही, शास्त्रानुसार गङ्गा के पश्चिम की ओर यमुना बहती है।

निमाई—अच्छा, यह तो हुआ, श्रीपाद ने कहा कि यही वृन्दावन है, उसका क्या?

अद्वैत—क्या यह वृंदावन नहीं है? अवश्य है। जहाँ पर आप हैं वहीं वृन्दावन है। प्रभु यह लीला संवरण कीजिए। आज पाँच दिन का उपवास है। आज दरिद्र ब्राह्मण के घर पर पदार्पण कर एक मुट्ठी अन्न ग्रहण कर अपने भक्तों की प्राण रक्षा कीजिए। आइए, चलिए।

निमाई—(नित्यानन्द से) क्या इसी निमित्त तुम मिथ्या कहकर हमें शान्तिपुर भुलावा देकर ले आए थे ?

निताई—झूठ हम बोलें, तुम्हारा क्या ? हम नरक भोग करेंगे। किन्तु प्रभो, तुम्हारा क्या विचार है ? तुम्हारी दुःखिनी माता और कोटि कोटि भक्त तुम्हारे लिए प्राण दे रहे हैं। तुम तो मायातीत भगवान हो, तुम में दया मया कुछ नहीं। किन्तु हम लोग तो माया-मुग्ध जीव हैं, हम लोग कैसे यह सह सकते हैं ? प्रभु, क्षमा करिए, इस समय श्री अद्वैत आचार्य के गृह पर चलिए।

(दूसरा हाथ पकड़कर ले जाना)

द्वितीय गर्भांक

(स्थान—श्री अद्वैत का गृह)

(महाप्रभु, अद्वैत, हरिदास प्रभृति)

हरिदास—आठ बलवान पुरुषों का द्वार पर रक्षा के लिए रखना बहुत अच्छा हुआ, नहीं तो प्रभु के दर्शन के लिए जो भीड़ हो रही है उससे समस्त घर द्वार चूर्ण हो जाता।

मुकुन्द—श्रीपाद नित्यानन्द शची माता को लिवा लाने को गए हैं। उनके साथ श्री नवद्वीप के भक्तगण भी आवेंगे। जान पड़ता है कि शान्तिपुर में सब लोग न समा सकेंगे और श्री आचार्य का बहुत अन्न व्यय होगा।

हरिदास—उसका कुछ सोच नहीं, श्री आचार्य का भण्डार अक्षय है। (नेपथ्य में हरिध्वनि) ज्ञात होता है कि नदियावासीगण आते हैं।

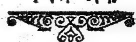
(बारबार हरिध्वनि)

निमाई—माता जी आ रही हैं।

(डोली में शची को लिए भक्तगण का प्रवेश)

शची—(डोली से मुख निकालकर) कहो हमारा निमाई कहाँ है, निमाई कहाँ है, प्यारा पुत्र ?

(प्रभु का माता को प्रणाम करना)



अद्वैत—सन्यासी लोग किसी को प्रणाम नहीं करते पर प्रभु स्वयं भगवान हैं और सब नियमों से परे हैं ।

शची—(निमाई को पास बैठाकर) निमाई, इस बाल्यावस्था में किसने तुम्हारे बाल काटे ? उस भाग्यहीन नाऊ को धिक्कार है । उसके हृदय में क्या दया मया नहीं थी । हमारी बड़ी इच्छा थी कि कुछ दिन नदिया में सुख से रहेंगे, किन्तु केशव भारती ने ऐसा नहीं होने दिया ।

निमाई—मां उनको दोष क्यों देती हो, सब दोष तो हमारा है। हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, इसी से सन्यास लिया। जीव मात्र का परम पुरुषार्थ कृष्ण-प्रेम है । वह सन्यास न लेने से भी प्राप्त किया जा सकता है।

शची—निमाई हमारे मन में कितनी बात आती है ! बारह वर्ष की अवस्था में तुम पितृहीन हुए, हमने स्त्री होकर भी तुम्हारा लालन पालन किया और विद्याध्ययन कराया। निमाई, क्या इसी हेतु तुमको श्री भागवत पढ़ाया था ? वत्स, तुम मुझे अनाथिनी कर देशान्तर चले जाओगे । कहो, हतभागिनी सरल विष्णुप्रिया का क्या होगा ? तुम्हारी बूढ़ी मां जीवित रहेंगी और तुम द्वार द्वार कौपीन और लँगोट पहिरकर भिक्षा माँग कर खाओगे। यह तो दूसरे को भी न सहन होगा हम मां होकर कैसे सहन करेंगी ?

निमाई--(हाथ जोड़कर) मां, अबोध संतान को क्षमा करो । मां तुमने जिस तरह मेरा पालन किया वैसा कभी किसी मां ने न किया होगा । हमने उसके बदले तुमको यह मार्मिक कष्ट दिया । मां, हमको क्षमा करो, हमारा धर्म भ्रष्ट हो गया, हमने तुमको जो कष्ट दिया है उसका प्रायश्चित कठिन है । मां हमने सन्यास लिया है, इस समय तुम हमको जो कहोगी वह करेंगे, जहां रहने को कहोगी वहीं रहेंगे, और क्या यदि कहो, "सन्यास त्याग कर हमारे घर चलो" तो वही करेंगे । हमने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की है । मां, हमको क्षमा करो ।

(रोना)

शची--(रोते रोते अञ्चल से आँख पोछना) चुप रहो, चुप रहो ।

अद्वैत--पूज्य माता जी आप भीतर पधारें ।

शची--तो चलो, जाते हैं । हम पाक करेंगे । और कोई तो रसोई बनाकर निमाई को नहीं खिला सकेगा ।

(शची का प्रस्थान)

निमाई--एक बार कृष्ण-मङ्गल गीत गाओ ।

श्रीवास--मुकुन्द, वासुदेव, आओ हरिकीर्तन करें ।

गीत

हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे कृष्ण कहु रे।

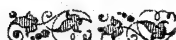
(संकीर्तन के अंत में निमाई का मूर्छित होना और भक्तों के उपाय से पुनः चेतन लाभ करना)

निमाई—हे बन्धुगण, मेरा निवेदन सुनो। हमने सन्यास लेकर जननी को बहुत दुःख दिया। उसका दुःख तुम लोगों ने अपनी आँखों से देखा। उसका दुःख देखकर हमने बड़ी भीषण प्रतिज्ञा की है। अर्थात् वह हमको जो करने को या जहां रहने को कहेंगी हम वही करेंगे। और क्या यदि घर लौट चलने को कहें तो वही सही। तुम में से कुछ प्रवीण लोग उनके पास जाओ और उनके मन का अभिप्राय समझो। हम नहीं जायँगे, कारण कि मेरे सामने वह अपना स्वातंत्र्य खो बैठती हैं। उनसे इस प्रकार कहना जिसमें वे कुछ भी कुंठित न हों। वह अपने मन की शांति के लिए जो कहेंगी वही करेंगे।

निताई—महाराज, क्या यह आप के मन की बात है?

निमाई—नहीं तो क्या, हम माता के साथ हँसी करते हैं?

निताई—तब आचार्य और श्रीवास चलिए, माता जी से पूछें।



तृतीय गर्भांक

(शची मां बैठी हैं। निताई, अद्वैत और श्रीवास का प्रवेश)

निताई—माता जी बड़ा शुभ संवाद है। इस समय आप के कहने मात्र से ही हम प्रभु को घर लिवा जा सकते हैं। उन्होंने सब भार आप ही के ऊपर छोड़ दिया है। प्रभु ने कहा है कि यदि आप कहें तो वह सन्यास छोड़कर घर जा सकते हैं।

अद्वैत—श्रीपाद नित्यानन्द, तुम जननी की स्वतन्त्रता को क्यों हरण करते हो? हम लोग प्रतिनिधि हैं। हम लोगों का यही कर्त्तव्य है कि प्रभु ने जैसी आज्ञा दी है ठीक उसी प्रकार करें। मां सुनिए। प्रभु के सन्यास लेने के कारण आपको जो दारुण दुःख हुआ है उसे देखकर प्रभु बहुत व्यथित हुए हैं और इसीलिए हम लोगों को आपके पास भेजा है। उन्होंने आपके सन्मुख ही प्रतिज्ञा की है कि आप जो कहेंगी वही करेंगे, जहाँ रहने को कहेंगी वही रहेंगे, और क्या यदि कहिए कि सन्यास छोड़कर घर चलो तो चले चलेंगे। वह आप का अभिप्राय जानने के निमित्त स्वतः आते किन्तु उनके सन्मुख आप का विचार-स्वातन्त्र्य नष्ट हो जाता है, अतः हम लोगों को भेजा है। आपका इच्छा क्या है कहिए, प्रभु वही करेंगे।

निताई—जननी की और इच्छा क्या हो सकती है ? मां, यही कहिए कि सन्यास त्यागकर घर चलें ।

अद्वैत—श्रीपाद नित्यानन्द, यह आपका अन्याय है । मां, सुनो । आप उनकी बात की ओर मत ध्यान दीजिये, आप जो ठीक समझिए वही कहिए ।

शची—(क्षण एक शांत रहने के बाद) उन्होंने केवल मेरा गौरव बढ़ाने ही के लिए मेरी अनुमति मांगी है । वह क्या वस्तु हैं, सो हम नहीं जानते । किन्तु वह मुझे भली भांति जानते हैं । उन्होंने मेरी राय माँगी है पर वह अच्छी तरह जानते हैं, कि हमारी राय क्या होगी, और वह भी एक छोड़कर दूसरी नहीं । वह घर चले यह बात हम कभी अपने मुख से नहीं निकाल सकतीं ।

निताई—(बात काटकर) मां क्या कहा ? आपकी क्या यही इच्छा है कि प्रभु को त्याग दें । अच्छा अवसर मिला है, आप जो कहेंगी वही करेंगे । तब क्या ऐसी बात कहना चाहिए ? आप क्या मां होकर उनको घर के बाहर निकालिएगा ?

शची—हम क्या मां होकर उनका परलोक बिगाड़ें। हम वैसी मां नहीं हैं । हम अपना प्राण त्याग करना अच्छा समझती हैं परन्तु निमाई का अकल्याण हो ऐसा काम नहीं कर

सकतीं । सन्यास लेकर पुनः उसका त्याग करने से मनुष्य पतित हो जाता है सो हम अपने सुख के लिए निमाई को पतित बनावें यह नहीं हो सकता । हमारी क्या इच्छा है । कौन नहीं जानता कि हमारी इच्छा निमाई को घर ले जाने की है । निमाई भी यह जानता है, और यह भी जानता है कि हम निमाई की माता हैं और ऐसा कोई काम उसको करने के लिए न कहेंगी, जिससे कि उसका धर्म नष्ट हो । उन्होंने सन्यास लिया है । अब उसका कोई उपाय नहीं । अब वह घर नहीं जा सकते, और क्या उस ग्राम में भी नहीं रह सकते । हां, यदि नदिया के निकट कहीं रहते तो हम बीच बीच में जाकर उनको देख सकतीं । किन्तु यह भी ठीक नहीं । वह ग्राम के निकट वास करेंगे तो हम जायँगे, तुम जाओगे और सब कोई जाकर "घर चलो, घर चलो" कह कह कर उनको तंग करेंगे । अतएव हम यही उचित समझते हैं कि वह श्री क्षेत्र में वास करें । ऐसा होने से हमको उनका संवाद बराबर मिलता रहेगा । तुम लोग भी जा सकते हो और वह भी गंगा स्नान के लिए आ सकते हैं । अतएव वह वहीं रहें ।

अद्वैत—इसीलिए भगवान ने तुम्हारे गर्भ में जन्म लिया । ऐसा निःस्वार्थ प्रेम केवल प्रभु की माता को ही शोभा देती है ।

श्रीवास—तुमने जैसी अनुमति दी वैसी अनुमति जगत में किसीकी माता नहीं दे सकती। और सब कहतीं कि घर चलो।

शची—(रोकर) निमाई, निमाई, अरे निमाई, देखो तुम्हारी माता कैसी है! हमने माता होकर तुमको घर के बाहर निकाला। हमारे बच्चे का तो कोई दोष नहीं। उन्होंने तो सब मेरे ही ऊपर छोड़ दिया था। निमाई! निमाई! निमाई!

(मूर्छित होना)



चतुर्थ गर्भांक

[स्थान—नीलाचल, समुद्रतीर]

(निमाई सन्यासी और अवधूत निताई)

निताई—प्रभु, तुम्हारी दशा देखकर हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। क्या थे, क्या हो गए ? तुम्हारा प्रकाण्ड शरीर, असीम बल कहाँ गया, अब खड़े होते काँपते हो। तुम हम लोगों के प्राण, प्राण के भी प्राण, जगत के प्राण हो। तुम्हारी ऐसी अवस्था देखकर हम लोग कैसे चुप रह सकते हैं ? तुम नित्य रो रो कर आँसुओं की धारा बहा कर अपने प्राणों की हत्या कर रहे हो।

निमाई—श्रीपाद, हमारा जो दुःख है वह तुम्हारे समान व्यथित व्यक्ति को छोड़कर और किसी से कहने योग्य नहीं। हमारे दुःख की सीमा नहीं। हम दुःख के समुद्र में डूब रहे हैं।

निताई—हां ! आपको क्या दुःख है ? अपने दुःख को तो तुमने स्वयं ही स्वीकार किया है। जीव हरिनाम नहीं लेते, अतः उनके कठोर हृदय को विगलित करने के निमित्त ही तुमने सन्यास लिया है। सुतरां सन्यास-जनित जो दुःख है उसको तो तुमने अपनी इच्छा ही से उठाया है। किस प्रकार विरह कातर होकर रोने से कृष्ण मिलते हैं, यही जीवों को शिक्षा देने ही के लिए



तुम सर्वदा रुदन किया करते हो। यह सब दुःख तो तुमने घर बैठे मोल लिया।

निमाई—श्रीपाद, मेरा दुःख दो प्रकार का है। एक तो निज का और एक दूसरों के निमित्त।

निताई—तुम्हारा निज का क्या दुःख है सो सुनें तो सही?

निमाई—दुःख यही है कि कृष्ण को नहीं पाया, पाकर भी खोदिया, क्या नहीं देखते कि श्री गोविन्द के विरह में मेरे नेत्र मेघ के समान हो रहे हैं?

निताई—प्रभु, यह बात रहने दीजिए। तुम्हारे मन की बात तुम्ही जान सकते हो। कृष्ण-विरह क्या वस्तु है यह जगत पर प्रकट करने के लिए ही तुमने यह विरह स्वीकार किया है। अतएव यह बात तो रहने दीजिए। दूसरों के निमित्त तुम्हारा क्या दुःख है सो कहो, सुनें तो सही।

निमाई—श्रीपाद, जीवों के दुःख से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है अथच वे अपना दुःख अनायासही दूर कर सकते हैं। जो कृष्ण नाम है वही श्रीकृष्ण हैं। इस नाम-स्मरण से बिना परिश्रम ही श्रीचरण प्राप्त होता है तिस पर भी जीव उसको भूलकर भवसागर में गोता खा रहा है यही सोचकर हृदय विदीर्ण होरहा है।

निताई—प्रभु तुम जगत का उद्धार कर रहे हो और कर चुके हो। तुम्हारी कृपा से हरिनाम की धारा से पृथ्वी प्लावित हो गई

है। क्या सेतुबन्ध, क्या गौड़ सभी स्थानों में तुम्हारी कृपा से जो तरंग उठी है, वैसी किसी देश में, किसी युग में नहीं उठी थी।

निमाई—श्रीपाद, मेरे अन्तःकरण की बात सुनो। यह बात ठीक है कि हमने हरिनाम वितरण किया किन्तु उसमें बाधा पड़ गई और जीवोद्धार नहीं हो सका। यही बात सोच कर मेरा हृदय फटा जाता है।

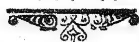
निताई—कौन सी बाधा ?

निमाई—श्री हरिनाम में अनन्त शक्ति है। हम हरिनाम वितरण करने के लिए गए, किन्तु क्या कहें, कहते लज्जा आती है। श्रीकृष्ण ने जीव मात्र के हृदय में प्रेम के लिए स्थान बना रखा है। हम हरिनाम बाँटने को गए तो हृदय में तरङ्ग उठने लगीं। हम उसीमें डूबने लगे, अब मेरे द्वारा जीवोद्धार की कोई संभावना न रही।

(निताई का गला धरकर)

मेरो मन आज यह कैसो भयो भाई!
नाम–प्रचार करन को निकसे डूबत नेह नदी कत आई॥
हृदय ताप निजसों पीड़ित अरु जीव–दुःख सों बिद्रत भाई!।
जीव उधार भयो नहिं हम सों भक्तन के हम सदा, निताई!॥

श्रीपाद! गोलोक से कृपामयी श्रीमती राधाजी के



पास से जो धन ले आए थे वह शेष होगया। 'अब जीवों का क्या उपाय किया जाय ?

निताई—इस जगत में तुम्हारे प्रकाश से जो तरंग उठी है उससे तो समस्त देश का उद्धार हो जायगा। स्त्री, पुरुष, बालक, म्लेच्छ, पतित इत्यादि कोई भी नहीं बच सकता।

निमाई—श्रीपाद, सन्यास लेकर हमने देश को त्याग दिया। तुम भी हमारे प्रेम में फँसकर साथ साथ यहाँ चले आए। इससे यही हुआ कि गौड़ देश का उद्धार नहीं होसका। तुम्हारे बिना यह कार्य कौन करेगा ?

निताई—प्रभु, तुम्हारी क्या आज्ञा है, कहिए। तुम तो जानते हो कि तुम्हारे लिए हम अपने प्राण को भी सौबार न्योछावर करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

निमाई—मेरी यही विनती है कि तुम गौड़ देश को लौट जाओ।

निताई—यह हमसे नहीं हो सकता। हमतो आपसे एक पग भी दूर नहीं रह सकते।

निमाई—श्रीपाद, हम लोगों को अपने सुख की इच्छा करने का अधिकार नहीं। हम लोग यदि अपने सुख की इच्छा करेंगे तो जीवों का उद्धार नहीं होगा।

निताई—यदि प्रचार के निमित्त वहाँ किसी भक्त को भेजना है तो किसी दूसरे को भेज दीजिए। तुम्हारे तो सैकड़ों

भक्त हैं । भेजने का प्रयोजन ही क्या ? वहाँ तो श्री अद्वैत आचार्य हैं न ?

निमाई—श्रीपाद, गौड़ बड़ा कठिन स्थान है, वहाँ ज्ञान ही में लोग उन्मत्त हैं । श्री आचार्य के ज्ञान से वहाँ उतना फल न होगा । वहाँ तुम्हारे समान जो प्रेम से मदमत्त हो वही कृतकार्य हो सकता है ।

निताई—हम समझे नहीं ।

निमाई—गौड़ में अधिकतर बड़े बड़े ज्ञानियों ही का वास है । वहाँ किसी के ज्ञान की कथा कहने पर वे लोग भी उसी प्रकार ज्ञान की बात कहेंगे । उससे केवल तर्क होगा, कोई फल न निकलेगा । किन्तु तुम तो ऐसा न करोगे । यदि कोई नाम न लेगा, तो तुम रोते हुए उसके पैर पर गिर पड़ोगे और तत्क्षण ही वह ज्ञान को दूर फेंक श्रीकृष्ण का शरण लेगा ।

निताई—प्रभु, तुम्हारा पैर पड़ते हैं और किसीको भेज दीजिए । तुमको छोड़कर जाने से मेरे प्राण नहीं बचेंगे ।

निमाई—(निताई का हाथ पकड़कर) श्रीपाद, बात मत बढ़ाओ । हमारे में जीवों के प्रति कितना स्नेह है ! हमारे में जो कुछ जीवों की ओर प्रेम है वह तुम्हीं से प्राप्त हुआ है और सीखा है । तुम गौड़ देश जाओ, और

जाकर दुःखी जीवों का उद्धार करो। श्रीपाद, हम अति दीन होकर तुमसे यही विनती करते हैं।

(रोना)

निताई—(क्रन्दन) हम देह, तुम प्राण, सुतरां मुझे कुछ भी स्वातंत्र्य नहीं। जो आज्ञा करो वही शिरोधार्य है।

निमाई—श्रीपाद, जीव मात्र ही के निमित्त हमने सन्यास लिया है किंतु तुमको मेरी अपेक्षा कोटि गुणा अधिक त्याग स्वीकार करना होगा।

निताई—सो किस प्रकार ?

निमाई—तुम अवधूत हो। तुमने संसार और कामिनी-काञ्चन को त्याग दिया है। तुमको पुनः संसार में प्रवेश करना होगा। तुमको विवाह कर गृहस्थ होना पड़ेगा।

निताई—उससे क्या होगा ?

निमाई—उससे तुम शास्त्रानुसार पतित होगे। समाज के अनुसार पृथ्वी पर तुम सब लोगों से अधिक घृणित होगे। लोग तुमको चिढ़ावेंगे, घृणा करेंगे, कुवाच्य कहेंगे और धिक्कारेंगे।

निताई—यह सब हमको क्यों करना होगा ?

निमाई—सुनो, हमने संसार त्याग किया, तुम उसे पहिले ही से त्याग कर चुके थे। सुतरां जीवों को यह विश्वास होगया है कि बिना संसार त्याग किए श्रीकृष्ण-

भजन नहीं हो सकता, ऐसा विश्वास होने से केवल उदासीन लोग ही श्रीकृष्ण-भजन करेंगे और उनमें विशेषतः पाषंडी होंगे।

निताई—उसके उपरान्त ?

निमाई—अतः तुमको पुनः गृहस्थ होकर लोगों को यह दिखलाना होगा कि श्रीकृष्ण-भजन में संसार त्याग की आवश्यकता नहीं है। जीवों को केवल श्रीकृष्ण-प्रेम की ही आवश्यकता है। वह होने ही से सब कुछ हो सकता है। तुम गृहस्थ होगे तभी लोग समझेंगे कि भजन-साधन में सर्वदा संसार-त्याग की आवश्यकता नहीं रहती।

निताई—प्रभु, समझे। तुमने शची मां का और विष्णु-प्रिया देवी का जीवोद्धार के निमित्त ही वध किया। हम तो बहुत छोटे हैं, हमारा भी उसी कारण वध करना चाहते हो। वही होगा, हमारा सर्वनाश हो, किन्तु जीवोद्धार हो।

(रोना)

निमाई—श्रीपाद देखो, तुम्हारे इस पवित्र असीम शक्ति-सम्पन्न शरीर द्वारा कितने ही कार्य पूरे होंगे। हमने पूर्व ही कह दिया है कि गृहस्थ हो जाने पर तुम से बहुत लोग घृणा करेंगे। तब समझना कि मेरा यही

कार्य है कि स्वतः दुःख भोग कर दूसरों के दुःख को दूर करना।

निताई—जीवों के दुःख दूर करने में जो दुःख हो वह दुःख नहीं वरन् महासुख है। हमको आप ऐसा दुःख और अधिक दीजिए।

निमाई—वह तो जानते हैं कि तुम दयासागर हो। श्रीपाद, मेरा एक और निवेदन है।

निताई—कहिए आपकी क्या आज्ञा है। सब को पालन करने की प्राण से चेष्टा करेंगे।

निमाई—जब गौड़ देश में हरिनाम प्रचार करोगे तब प्रत्येक व्यक्ति को समझ समझ कर तो हरिनाम दे नहीं सकोगे। जिसको सामने पाओगे उसीका उद्धार करोगे। एक बात आपको स्मरण कराए देते हैं। जो स्वस्थ हैं, उनको वैद्य या औषधि से कुछ काम नहीं है। तुम यदि साधु देखकर उद्धार करोगे तब तो वह केवल स्वस्थ लोगों की चिकित्सा के समान होगा। पर ऐसा नहीं, जो जितना ही पतित और पापी हो उतनाही वह अधिक तुम्हारे कृपा का पात्र होगा। पहिले पापी फिर दूसरे, समझे? एक बात और है।

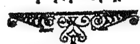
निताई—कहिए, कहिए, अब बिलम्ब न करिए। हम चले। तुम्हारी आज्ञा पालन करने के लिए हम एकही दौड़ में गौड़ देश जा पहुँचेंगे।

निमाई--श्रीपाद, जो पंडित लोग हैं, जिनके मन में यह विश्वास है कि वे सब जानते हैं, उनके अब और कुछ जानने योग्य नहीं है वा जो दांभिक हैं, जो अपने को बड़ा साधु वा भक्त समझते हैं, उन लोगों के समान दुःखी और हतभाग्य जगत में कोई नहीं है। देखो गौड़ देश में बहुत पंडित मिलेंगे जो कि शास्त्र को लेकर अपनी उदर-पूर्ति करते हैं। इसलिए भगवत प्रेम या भक्ति से एक बार ही वंचित हैं। इन लोगों के प्रति विशेष कृपा करना।

(गदाधरदास, वासुदेव घोष और रामदास आदि भक्तों का प्रवेश और प्रभु को साष्टांग प्रणाम करना)

निमाई--कौन गदाधरदास, रामदास, वासु आए ? आओ, आओ हम तुम लोगों का स्मरण कर ही रहे थे। बड़े भाग्य से तुम लोग आगए। श्रीपाद गौड़ देश उद्धार करने को जारहे हैं, तुम लोग उनके संग जाओ।

निताई--प्रभु की आज्ञा सुनो। प्रथम आज्ञा यह है कि जो सन्मुख आवे उसी का उद्धार करना होगा। द्वितीय यह कि जो जितना अधिक पापी होगा उस पर उतनी ही अधिक कृपा करनी होगी। और तृतीय यह कि जो बड़े पंडित, ज्ञानी और धर्माभिमानी हैं उनपर सर्वापेक्षा अधिक कृपा करनी होगी।



वासु०——जिसको देखेंगे उसीका उद्धार करेंगे, यह आज्ञा तो केवल श्रीभगवान ही स्वयं कर सकते हैं। हम लोग यदि निज शक्त्यानुसार यह कार्य करने जायँ तो कोई भी हरिनाम नहीं लेगा। किन्तु जब प्रभु की आज्ञा से जारहे हैं तब किसका सामर्थ्य है जो उसका अतिक्रमण करे? जिसको हरिनाम देना होगा वह व्यक्ति उसी समय ग्रह-ग्रस्त व्यक्ति के समान उसे ग्रहण करेगा।

निताई—उठो, चलो तब चलें:——

भजु गौरांग, कहु गौरांग, लेहु गौरांग नाम रे।
भजत जो गौराँग चाँद सोइ मेरो प्रान रे॥

(सब का प्रस्थान)

पंचम गर्भांक

[स्थान–नादिया, गंगातीर]

(न्यायरत्न और विद्यावागीश का प्रवेश)

न्याय०—मतवालों ने आकर गौड़ देश में खूब गोलमाल मचा रखा है।

विद्या०—हां चारों ओर केवल हरिध्वनि ही सुनाई देती है, देश को पवित्र कर दिया है।

न्याय०—कैसे पवित्र किया है सो सुनो। कृष्ण चैतन्य ने नीलाचल से दस बारह पागल मनुष्यों को गौड़ देश में जीवों (गौड़ देश के) के उद्धारार्थ भेजा है। ये सब पागल हैं। इन लोगों में एक गदाधरदास हैं। इसने पानीहाटी के काजी के घर पर जाकर कहा "अरे काजी। बाहर आ और हरि बोल, नहीं तो तुम्हारी मूँड़ी काट डालेंगे।" काजी क्रोध से अधीर होकर "क्यों बे" कहता हुआ उसको पकड़ने और मारने के लिए बाहर आया। किन्तु उसको देखते ही शान्त हो गया। भाग्य से उसने कुछ नहीं कहा, किन्तु वह यवन है उससे इतनी धृष्टता करने का क्या प्रयोजन?

विद्या०—धृष्टता नहीं है। श्री कृष्ण चैतन्य ने इन लोगों को इतनी शक्ति देकर भेजा है कि जिसके कारण मनुष्य

इन लोगों को देखते ही द्रवीभूत और भक्तिपूर्ण हो जाते हैं।

न्याय०—तुम्हारी भी क्या बुद्धि भ्रष्ट हो गई?

विद्या०—भ्रष्ट नहीं हुई। सुनो, इन लोगों को भूख नहीं, निद्रा नहीं, आराम नहीं; वे लोग रात दिन आनन्द में मग्न रहते हैं। फलेन परिचीयते। इन लोगों के आने से लाखों मनुष्य धर्मानुरागी हो गए, सुतरां यदि ये लोग पागल हैं तो काम के पागल हैं।

न्याय०—क्यों? क्या ये पंडित हैं? क्या ये शास्त्र जानते हैं? इन लोगों ने क्या तपस्या की है? केवल नाचते गाते घूमा करते हैं।

(नेपथ्य में गान)

यह देखो, कौन आ रहे हैं। मालूम होता है कि वही सब हैं।

(एक भक्त का नाचते और गाते प्रवेश)

भक्त—हरि नाम दीन्हों जग बौराइ।

एक निताई घूमि चहूँ दिसि, जग दीन्हों बौराइ॥

गौर संग जौ होत न जानौं कहा होत जग आज। हरि०।

न्याय०—आओ तुम कौन हो? जरा खड़े रहो, इतना पागलपन क्यों करते हो?

भक्त—(खड़े होकर गाना) **'गौर संग जौ होत न जानौं कहा होत जग आज।'**

न्याय०—गौर के रहने पर क्या होता ?

भक्त—महाशय अकेले निताई ने जगत को पागल बना दिया है । यदि गौर संग में रहते तो क्या न होता !

विद्या०—तुम्हारे निताई क्या करते हैं ?

भक्त—निताई एक बार ही बराबर कर देते हैं, बड़े को छोटा, छोटे को बड़ा। जो पापी है उसको परम भक्त और जो शीर्ष स्थानीय व्यक्ति हैं उसको तृण से भी दीन बना देते हैं । ब्राह्मण शूद्र का पादोदक पान करते हैं, स्त्री लोग आचार्य का काम कर रही हैं और भुवन-मंगल हरिनाम जगत में चारों ओर फैल रहा है ।

न्याय०—क्या तुम निताई को यहाँ पर एक बार ले आ सकते हो ? उनसे कहो कि वह हमसे विचार करें। कोरा पागलपन करने से काम न चलेगा ।

भक्त—श्री नित्यानन्द विचार करेंगे ? वह तो इस समय माली हुए हैं, सुनोगे ?

गीत

आवहु लेहु प्रेम रस बाँटत नित्यानन्द बुलाइ ।
माली होइ लेइ कर डाली प्रेम पुहुप फल देत लुटाइ ॥

और निताई क्या करते हैं सुनो।

(गाना-नाचना)

भरि भरि कलस लुटावत यह रस तबौ न कबहूं जात फुराइ।
जतनोई बाँटत बाढ़त सो,

और एक बात नहीं सुना, देश में प्रेम की बाढ़ उमड़ी हुई चली आ रही है ।

(नृत्य और गीत)

प्रेम नदी महँ शांति पूर तौ देखहु, डूबि चल्यो है भाइ ।

विद्या०—(भग्न स्वर से) यह सब देख सुनकर मन में न मालूम कैसा हो रहा है । (भक्त का हाथ पकड़ कर) हे भैया तुमने मन का ऐसा भाव कहाँ पाया ?

भक्त—कैसा भाव ?

विद्या०—यही जो आनन्द से मग्न हो कर झूम रहे हो ।

न्याय०—और क्या, थोड़ी सी मदिरा पी है ।

विद्या०—नहीं, नहीं, मदिरा पीकर जो मतवाला होता है उसको देखकर घृणा होती है । इन लोगों को देखकर हृदय पसीज उठता है ।

न्याय०—विद्यावागीश का समय आ गया । देखो साव-धान, कहीं गिर मत पड़ना, माथे पर कुछ जल दें ?

विद्या०—(भक्त के प्रति) तुम्हारे श्री नित्यानन्द प्रभु कहाँ हैं ?

भक्त—वह इसी मार्ग से आवेंगे। वह कीर्तन का शब्द सुनो।

(दूर पर कीर्तन की ध्वनि)

(नित्यानन्द और भक्तगण का कीर्तन और नृत्य करते करते प्रवेश)

भक्त०—(नृत्य करते करते गीत)

हरि बोल हरि बोल हरि बोल भाई।
कलियुग महँ बिनु नाम अन्य गति सपनेहु नहिं पावत भाई ॥
झूठ काज महँ बीत चले दिन जन्म वृथा कत देत गँवाई।

पहिले भक्त--(नित्यानन्द से) ठाकुर शान्त हो, यहाँ पर दो जीव हैं। इनका उद्धार कर दीजिए।

निताई—ठीक तो, प्रभु की यही आज्ञा भी है कि जिसको सामने पाओ उसको हरिनाम दो। सब मार्गों को बन्द करो जिसमें कोई भाग न जाय। (विद्यावागीश का हाथ पकड़कर) तुम दो में से एक मालूम पड़ते हो। तुम्हारी परीक्षा करते हैं। तुम अपने मन में यह सोचते हो न कि तुम बड़े पंडित हो ?

विद्या०—नहीं, हम कुछ भी नहीं जानते।

निताई—अच्छा, क्या तुम अपने को बड़ा साधु मानते हो।

विद्या०—नहीं, हम बड़े पापी हैं।

निताई—तब तुम अभी ठहरो। तुमको छोड़कर नहीं जा सकते, क्योंकि सन्मुख आ गए हो। जो हो तुम्हारी पीड़ा उतनी गुरुतर नहीं है, तुम्हारी चिकित्सा कुछ ठहर कर भी हो सकती है।

विद्या०—हम नहीं समझे।

निताई—अच्छा अब समझो। हमारे ठाकुर श्री गौरांग प्रभु हैं। उनकी आज्ञा है कि जिसको सामने पाओ उसी का उद्धार करो। तुम सामने पड़ गए हो इसलिए



अब तुम नहीं बच सकते।

विद्या०—आपने जो कहा कि हमारी पीड़ा उतनी गुरुतर नहीं इस लिए हमारी चिकित्सा कुछ विलम्ब से भी हो सकती है, इसका क्या तात्पर्य ?

निताई—सुनो, उन्होंने और कहा है कि जो दांभिक है उसका सबसे पहिले उद्धार करना होगा। प्रभु की यही आज्ञा है। तुम दांभिक नहीं हो अतएव तुम्हारा उद्धार अभी ठहर कर होगा।

विद्या०—नहीं यह नहीं हो सकता। हमने जो अभी अपना परिचय दिया है कि हम दीन हैं वह मेरा कपट था। मेरा मन अभिमान से पूर्ण है। अतएव आप हमारा अभी उद्धार करो।

निताई—अच्छा वही सही। तब तुम्हारा अब और क्या उद्धार करें ? तुम्हारा तो उद्धार हुआ ही है, तुम तो प्रभु के ही भक्त हो। तुम्हारा हृदय भक्ति से पूर्ण है। तुम्हारे ऊपर प्रभु की पूरी कृपा है।

विद्या०—(रोते रोते) आप हमारा उद्धार करिए।

निताई—अच्छा, हरि बोलो।

विद्या०—हरि बोलो, हरि बोलो, हरि हरि।

निताई—(विद्यावागीश का हाथ पकड़कर) आओ हरि बोलें और नत्य करें।

(इस प्रकार मुख से हरि बोलना और दोनों का नाचना। विद्यावागीश का गिरना और मूर्छित होना।)

निताई--(चिल्लाकर) प्रभु, प्रभु, यह एक और दास लो।

प्रथमभक्त—यह एक और मनुष्य बचे हैं । हमारे न्याया-लंकार महाशय ।

निताई–इसीसे मालूम पड़ता है कि छिपकर बैठे है। छिपने से काम नहीं चलेगा। अब तुम्हारी पारी है। आज्ञा सुना है ? जिसको सामने पावो–

न्याय०--(बात काटकर) सुनो, हमारी ओर मत आओ, आने से अच्छा नहीं होगा।

निताई--खूब अच्छा होगा, तुम्हारा भी भला होगा और मेरा भी।

न्याय०--यह देखो हमारे हाथ में डंडा है । हमारे पास आओगे तो हम प्रहार करेंगे।

निताई--अच्छा, प्रहार तो मेरे अङ्ग का भूषण है। तुम क्या, बहुतों ने प्रहार किया है । होने दो । तुम क्या पण्डित हो !

न्याय०--हाँ, हम पंडित हैं, तुम्हारे समान मूर्ख नहीं।

निताई—क्या आप एक बड़े साधु हैं ?

न्याय०--हाँ साधु हैं, तुम से बढ़कर साधु हैं भण्ड नहीं।

निताई--तब तो ठीक हुआ। तुमतो अवश्य ही कृपा के पात्र हो तुमको तो बड़ा अभिमान है, जिसको अभिमान है वह श्रीभगवान से बहुत दूर है । अतएव सबसे

पूर्व तुम्हारा उद्धार करना मेरा कर्तव्य है। प्रभु की यही आज्ञा है!

न्याय०---अपना सब भँड़ेरियापन रहने दो, हम तुम्हारे प्रभु को नहीं मानते।

निताई-- तुम प्रभु को नहीं मानते? बोध होता है कि उनको देखा नहीं है, उनके कार्यों को भी नहीं देखा है। अभी उनकी अवस्था सत्ताइस वर्ष की है। रूप श्रीकृष्ण के समान है और पंडिताई की सीमा नहीं। जीवों को देखकर दुःख से रोते रोते मूर्च्छा को प्राप्त हो जाते हैं। इतने लोगों पर कृपा किया कि कोटि कोटि मनुष्य इस दो तीन वर्ष के बीच में शरणागत हो गए। उनको नहीं मानते?

न्याय०—हां नहीं मानते।

निताई---उनकी शक्ति को देखो। विद्यावागीश महाशय के कान में हरिनाम कहते ही वह प्रेम से मूर्छित हो गए। भगवद्शक्ति व्यतीत क्या ऐसा हो सकता है। ऐसे ही करोड़ों मनुष्य का हमारे प्रभु की कृपा से कृष्ण-प्रेम पाकर उद्धार हुआ है।

न्याय०---विद्यावागीश का, मालूम होता है, उद्धार हो गया।

हे विद्यावागीश, (शरीर हिलाकर) कहां तक उद्धार हुआ ?

निताई—इस प्रकार नहीं चैतन्य करा सकते । हम चैतन्य कराते हैं । (विद्यावागीश के कान में उच्चैःस्वर से कृष्ण–नाम कहना, ऐसा करने से विद्यावागिश का आँख खोलना, फिर उठकर दोनों हाथ उठाकर हरि बोलो, हरि बोलो कहते हुए नाचना)

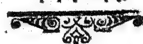
न्याय०—क्यों विद्यावागिश, पागल हो गए क्या ?

विद्या०—(नाचते नाचते) पागल ! पागल ! पागल ! हम पागल ! तुम पागल ! जगत पागल ! अहा ! क्या आनन्द ! इस समय मङ्गलमय श्रीभगवान को देख रहे हैं। वह मेरे, हम उनके । वह मेरे प्राण के भी प्राण हैं ।

निताई—(न्यायालङ्कार से) देखा, श्रीकृष्ण के आश्रय करने का फल ? यह एक विख्यात अध्यापक, अटल, गम्भीर और ज्ञानवान हैं । इस समय आनन्द से नृत्य कर रहे हैं । इस आनन्द का मूल्य प्राण से भी अधिक है ।

न्याय०—जो हो हमारे निकट मत आना ।

निताई—तुम क्या छोड़ दिए जाओगे ? यह नहीं हो सकता। प्रभु की ऐसी आज्ञा नहीं है ।



न्याय०—जाओगे कि नहीं ?

निताई—अब नहीं जा सकते ।

न्याय०—हम हरिनाम न लेंगे तो तुम क्या करोगे ?

निताई—यह देखो क्या करेंगे । (हाथ जोड़कर) महाशय हम तुम से विनती करते हैं कि हरिनाम ग्रहण करो ।

न्याय०—जाओ जाओ हम नहीं लेंगे ।

निताई—(गाकर) "आओ भाई गर सों लागो हरिनाम बोलो मुख से" । (सहज स्वर से) हरिनाम कह कह कर हमको एक बार ही मोल ले लो, हम तुम्हारे दास हो जायँगे । (दाँत और हाथ में तृण लेकर) अच्छा हम यह दाँत और हाथ में तृण लेकर तुम से बहुत दीनता से विनती करते हैं कि हरिनाम ग्रहण करो, अनायास तर जाओगे । तुम हरिनाम लेकर दया-मय श्रीकृष्ण पर कृपा करो ।

न्याय०—जाओ मुझे विरक्त मत करो, हम नहीं ले सकते, हम घर जाते हैं ।

निताई—(घुटना टेककर) भाई ऐसा सुअवसर क्यों छोड़ते हो ? हे भगवन् ! हे श्रीकृष्ण ! हे श्रीगौर ! न्यायालङ्कार महाशय को ग्रहण करो । (रोना) भाई आओ, हम सब मिलकर अपने प्राणनाथ का भजन

करें । तुम जिसके हो, हम भी उसीके हैं । हम उसका भजन करें और तुम नहीं, यह कैसे हो सकता है ?

न्याय०—जो हो, इस पर हम विचार करेंगे, इस समय घर जाते हैं ।

निताई—शुभ कार्य में क्यों विलम्ब करते हो ? नहीं होगा, नहीं होगा, हे श्रीभगवन् ! न्यायालङ्कार महाशय को ग्रहण करो (पृथ्वी पर लोटना) प्राण गया, प्राण गया, हे श्री भगवन् तुम यदि इसी समय न्यायालङ्कार महाशय को नहीं ग्रहण करोगे तो हम अवश्यमेव अपना माथा पटककर प्राण दे देंगे ।

न्याय०—अरे यह क्या भोग है ? आज क्यों नहीं ठहर जाते ? यह देखो मुझे रुलाई आ रही है । लोग क्या कहेंगे ! हम यदि अभी हरि, हरि, हरि कहें तो जनता चिढ़ावेगी । अभी हरि न कहेंगे । (चिल्लाकर) हरि बोलो, हरि कभी न कहेंगे, हरि बोलो, हरि, मुख में यह आप ही आरहा है, यह क्या भोग, हे हरि, हरि !

निताई—(उठकर न्यायालङ्कार का हाथ पकड़कर) आओ भाई नाचें । (हाथ पकड़कर नृत्य, न्यायालङ्कार का नाचना)

न्याय०—बचगए ? हम बचगए । हे श्री गौराङ्ग ! हमको

नचाया, हमको अभी क्षमा करो। हे प्रभु! इस दीन भक्तिशुष्क, कठिन ज्ञानाभिमानी निर्बोध को अपने चरण में स्थान दीजिए।

निताई—एक मनुष्य को भी न छोड़ेंगे। आओ भाई हम लोग अपने नए कृष्ण के दास को घेर कर नाचें।

(सब का हाथ पकड़कर न्यायालङ्कार को घेर कर नाचना और गाना)

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे
(एक बार उदय होहु हे)
राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव रक्ष माम्॥



छठा गर्भांक

[स्थान–निमाई का गृह]

(एक चावल से पूर्ण और एक खाली पात्र सामने रखे हुए श्रीमती विष्णुप्रिया जप कर रही हैं)

श्रीमती—कांचना ! इधर आओ (कांचना का प्रवेश) आज हमने एक बड़े आश्चर्य की बात देखी है।

कांचना—ठकुरानीजी ! कृपाकर मुझे एक बात कहने दीजिए। एक एक फेरा माला जपकर आप एक एक चावल उठाकर रखती है और वही कुछ चावल आप का समस्त दिन का आहार होता है। तुम जो केवल इन थोड़े से चावल को खाकर इतने दिन पर्यन्त जीवित हो यह केवल प्रभु की कृपा मात्र है।

श्रीमती—जो हो, पाँच वर्ष हुए प्रभु गृह त्यागकर चले गए, उनके साथ ही साथ मेरा भी सब यहां का सुख शेष हो गया किन्तु आज मेरा हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो रहा है, मेरी बाँई आँख बारबार फरक रही है। इसका क्या कारण है सो हम नहीं कह सकतीं।

काञ्चना—ठकुरानी जी, तुमने जैसा कठोर व्रत धारण किया है वैसा कभी किसी ने न किया होगा। प्रभु निश्चय ही आकर तुमको दर्शन देंगे।

श्रीमती—आज गङ्गास्नान को जाती समय देखा कि—

काञ्चना—तुम जब गङ्गा स्नान को जाती हो तब शची माँ का अञ्चल पकड़कर जाती हो। तुम्हारे दोनों नेत्र माता के चरण कमल की ओर झुके रहते हैं, तब तुमने कैसे देखा?

श्रीमती—हमने हरिध्वनि सुनकर मुख ऊपर उठाया। सुना कि मानो कोटि कोटि लोग ब्रह्मांड-भेद करते हुए हरिध्वनि कर रहे हैं। और देखा कि उस पार, कुलिया नगर में, कोटि कोटि लोग हाथ उठाकर हरिध्वनि और नृत्य कर रहे हैं। तब हमने सोचा कि प्रभु अवश्य इन लोगों में होंगे, प्रभु के अतिरिक्त ऐसा काम कौन कर सकता है? मेरा केवल वह भ्रम ही था यह ठीक नहीं कह सकतीं पर देखा कि उन्हीं कोटि २ लोगों के बीच में एक जन नाच रहे हैं और उनको घेर कर सब कोई नाच रहे हैं। यदि पूछो कि कैसे देखा तो उसका उत्तर यह है कि वह सब से ऊँचे और सुन्दर थे।

कांचना—तब वही हम लोगों के प्रभु हैं; इस में अब कोई सन्देह नहीं, कारण कि इतने लोगों के बीच में खड़े होने पर जो देख पड़े उतना ऊँचा पुरुष उनके अतिरिक्त और कौन हो सकता है? और तुम कहती हो कि

सुन्दर थे तो हम लोगों के प्रभु का वर्ण भी तो गलित स्वर्ण के समान है। ऐसा वर्ण तो किसी का नहीं है।

(नेपथ्य में कोलाहल और हरिध्वनि, एक भक्त का प्रवेश)

भक्त—कौन है। शची माँ कहाँ हैं ? प्रभु आरहे हैं।

(श्रीमती का भीतर जाना और शची का प्रवेश)

शची—क्या कहते हो भैया ?

भक्त—और क्या, आज बड़ा शुभ दिन है। प्रभु घर आ रहे हैं।

शची—तुम क्या हमको ठगने आए हो ? वह सन्यासी हैं, वह घर किस प्रकार आ सकते हैं।

(नेपथ्य में हरिध्वनि)

भक्त—यह सुनिए, वह आरहे हैं। ठकुरानी जी, आप क्या यह नहीं जानती कि सन्यास लेकर एक बार जन्म-भूमि का दर्शन करना पड़ता है। उसी नियमानुसार प्रभु आरहे हैं।

(प्रभु और भक्तगण का प्रवेश)

शची—यह कौन मेरा पुत्र निमाई ? आओ बेटा, आओ गोदी में आओ।

(प्रभु का प्रणाम करना)

प्रभु—माँ हम तुम्हारे निर्बोध संतान हैं। हम से आपकी कोई सहायता न बन पड़ी और न कुछ सुख ही प्राप्त हुआ।

शची—छिः बेटा, ऐसी बात मत कहो, तुम जिसके संतान हो उसको फिर क्या दुःख ? मेरा मृत्यु-काल निकट है, यह मैं समझती हूँ कि उस समय तुम्हारी गर्भ-धारिणी होने से श्रीकृष्ण की कृपा होगी। तब फिर कैसा दुःख ?

प्रभु—(उठकर) मां हम जाते हैं।

शची—बेटा, आज यहीं भिक्षा करो, हम एक बार पाक कर तुमको इच्छानुसार भोजन करावेंगी।

प्रभु—मां तुम श्री अद्वैत आचार्य के घर पर आओ, हम भी वहीं जाते हैं। वहाँ हम तुम्हारे ही हाथ से भिक्षा करेंगे।

(सर्वांग वस्त्र से ढाँके हुए श्रीमती का प्रवेश और प्रभु को साष्टाङ्ग प्रणाम करना)

प्रभु—(दो पग पीछे हटकर) तुम कौन ? क्या चाहती हो ?

श्रीमती—हम आपकी दासी की दासी हैं। प्रभु तुम्हारी कृपा से तीनों लोक उद्धार हो गया। क्या केवल हत-भागिनी विष्णु-प्रिया ही रह जायगी ? प्रभु अब हम आपसे क्या प्रार्थना करें ? हमको क्या अभाव है ? हम घर में रहती हैं और आप वन में। हम कपड़ा पहिरती हैं और आप केवल कौपीन। प्रभु

अंत समय में तुम्हारा श्रीचरण प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ।

प्रभु--कृष्ण कृपामय हैं, उनका भजन करो ।

श्रीमती--हम आप ही को जानते हैं, श्रीकृष्ण को नहीं जानते। आप हम को ऐसी कुछ वस्तु दे जाइए जिस से, जितने दिन जीवन धारण करें, आपके स्मरण और ध्यान में समय काट सकें ।

प्रभु--(कुछ सोचकर) अच्छा ऐसा ही होगा । अपने बदले अपना यह दोनो खड़ाऊँ तुमको दिया । तुम इसको ग्रहण करो ।

(खड़ाऊँ का देना)

श्रीमती--(खड़ाऊँ को प्रणाम करते करते) तुम्ही मेरे प्रभु हो । तुम्हारी ही हम पूजा करेंगे । तुम्हीको हृदय में धारण कर अपनी विरहयन्त्रणा दूर करेंगे ।

(खड़ाऊँ को चूमना, हृदय में लगाकर मस्तक पर रखकर धीरे धीरे प्रस्थान और सब का हरिध्वनि करना)

यवनिकापतन

" भज्ञु निताई गौर राधेश्याम
जपु हरे कृष्ण हरे राम ॥ "



कमलमणि ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प—

महाकवि बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधर दास कृत

जरासंधबध महाकाव्य ।

यह काव्य वीर रस पूर्ण है और हिंदी साहित्य में यह पहिला महाकाव्य माना जाता है। इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्रजीने सं० १९३१ तथा ३२ में प्रकाशित किया था जो अब अलभ्य हो रहा है। हिंदी कविता प्रेमी इस ग्रंथ की बाट बहुत दिनों से देख रहे थे। इस ग्रंथ में श्रीमद्भागवत के कथानुसार-मगध नरेश जरासंध की मथुरापर चढ़ाई युद्ध आदिका विस्तार पूर्वक वर्णन दिया गया है। यमक अनुप्रास आदि की बहार पठनीय ही है। काव्य की क्लिष्टता कुछ अंशों में दूर करने के लिए पादटिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। बाबू राधाकृष्णदासजी ने भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी में लिखा है कि 'जरासंधबध महाकाव्य बहुत ही पांडित्यपूर्ण वीररस प्रधान ग्रंथ है। भाषामें यह ग्रंथ एम० ए० का कोर्स होने योग्य है।' महाकवि का चित्र दिया गया है। पृष्ठ संख्या २०० और कपड़े की जिल्द। मू० १।)

इस ग्रन्थ पर आई कुछ सम्मतियाँ—

श्रद्धेय पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी लिखते हैं—प्राचीनों की शैली को ध्यान में रखते काव्य उत्तम है—वीररस से परिप्लुत है। महाकाव्य के लक्षण इसमें पूरे तौर से घटित होते हैं। प्रायः सरस भी है।

दि ऑनरेबुल पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए० रायबहादुर, लखनऊ से लिखते हैं कि—यह प्रसिद्ध ग्रंथ पढ़कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। उसमें कविता की बहुत ही विशद प्रभा दृष्टिगोचर होती है।

Bhartendu Harishchandra used to take pride in the fact that his father, Babu Gopal Chandra alias Girdhardas, was a great poet who had written 40 books. A perusal of this will convince any reader that Harishchandra's pride was not dictated solely by fillial devotion. The author's fondness for Figures of Speech has made the language difficult at places. The editor has done well in explaining the difficult words and passages in footnotes.

Leader, Allahabad.

संपादक द्वारा संपादित, अनूदित तथा संकलित अन्य पुस्तकें—

खुसरो की हिंदी कविता—इसमें खुसरो की समग्र मुकरियाँ, बुझौअल आदि संगृहीत हैं। खुसरो की जीवनी भी बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। मू० ।।)

प्रेमसागर—लल्लूलाल कृत। सन् १८१० और सन् १८४० की प्रकाशित प्रतियों से मिलान कर पाठ शुद्ध किया गया है। भूमिका में हिंदी-गद्य-साहित्य का विकास भी विवेचना-पूर्ण दिया गया है। मू० २)

तुलसी ग्रंथावली—तीन भाग-इसके अन्य दो संपादक पं० राम चन्द्र शुक्ल और लाला भगवान दीन हैं। इसका पाठ अत्यन्त शुद्ध तथा क्षेपक रहित है। पहिले में रामचरित-मानस, दूसरे में गोस्वामीजी के अन्य ग्यारह ग्रंथ और तीसरे में जीवनी, लेख और कविताएँ हैं। मू० ६)

रहिमन विलास—रहीम की कविता का सब से बड़ा संग्रह है और अंत में टिप्पणी दी गई है। मू० ।=)

भ्रमर गीत—नंददासजी कृत। पाद-टिप्पणी-युक्त है। मू० ≡)

हुमायूँ नामा—बादशाह हुमायूँ की सगी बहिन द्वारा लिखे गए फारसी के हुमायूँनामा का अविकल अनुवाद है। मुगल-हरम के भीतरी दृश्यों का इसमें जीता जागता वर्णन है। मू० १।।)

सुजान चरित्र—सूदन कवि कृत। यह वीर रस पूर्ण काव्य ग्रंथ है। इसकी भूमिका में राजा सूरजमल तक का भरत-पुर का इतिहास फारसी इतिहासों से बहुत खोजकर दिया गया है। मू० २)

संक्षिप्त रामस्वयंवर—महाराज रघुराजसिंह कृत रामस्वयंवर का संक्षिप्त संस्करण है। मू० १।)

भाषा भूषण—जोधपुर-नरेश महाराज यशवंतसिंह कृत। कई प्रतियों से पाठ शुद्ध कर तथा अन्त में टिप्पणी देकर इस की उपादेयता बढ़ा दी गई है। ग्रंथकार की जीवनी तथा चित्र भी दिया गया है। मू० ।।।)

मुद्राराक्षस—भारतेंदु बा० हरिश्चन्द्र कृत। संस्कृत से पाठ मिलान किया गया है। अन्तमें विस्तृत टिप्पणी दी गई है। लगभग अस्सी पृष्ठ की भूमिका में संस्कृत मुद्राराक्षस के समय की ऐतिहासिक विवेचना, मूलग्रंथकार तथा अनुवादक की जीवनी, नाटक के लक्षण आदि दिए गए हैं। पृष्ठ संख्या ७६ + २२४ मू० १)

कार्यालय-द्वारा प्रकाशित होनेवाली

अन्य पुस्तकें

१—काव्यादर्श (दंडी कृत)-मूल तथा हिंदी अनुवाद। भूमिका में संस्कृत लक्षण ग्रंथोंका इतिहास, रीति दोषादि की विवेचना आदि भी की जायगी।

२—इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी—संसार के उतार चढ़ाव का पूरा दिग्दर्शन इंशाअल्लाह खाँ की जीवनी से होता है। इन का स्थान हिंदी साहित्य में लल्लू लालजी के समकक्ष है। रानी केतकी की कहानी का पाठ कई प्राचीन प्रतियों से मिलान कर शुद्ध किया गया है।

३—मआसिरुल् उमरा—यह ग्रंथ नवाब शाहनवाज़ खाँ समसामुद्दौला की कृति है जिसमें मुग़ल दरबार के सात सौ तीस उमरा की जीवनियाँ दी गई हैं। इस ग्रंथ से केवल हिंदू राजाओं तथा सर्दारों के चरित्रों का अनुवाद किया गया है। यद्यपि ये चरित्र कहने को एक्यानबे ही हैं पर वास्तव में लगभग तीन सौ राजाओं की जीवनियाँ सम्मिलित हैं। राजपुताने तथा बुन्देलखंड के कई राजवंशों का इतिहास एक एक चरित्रों में आ गया है। कई चित्र भी दिए जायँगे।

४—बुन्देलखंड का इतिहास—यह बुन्देलखंड का विस्तृत इतिहास बड़ी खोज से लिखा जा रहा है। इसका कुछ अंश नागरीप्रचारिणी पत्रिका के भाग ३ अंक ४ में निकल चुका है।

५—भारतेंदु बा० हरिश्चन्द्र का जीवनचरित्र-यह ग्रंथ बड़ी खोज के साथ लिखा जा रहा है। इसमें कई चित्र उनकी भिन्न भिन्न अवस्था के दिए जायँगे।

६—श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु का जीवनचरित्र-कलियुग-पावनावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु की यह विशद जीवनी होगी। हिंदीमें इस विषय का यह प्रथम ग्रंथ होगा।

कमलमणि-ग्रंथमाला-कार्यालय, बुलानाला काशी

के नियम—

१—इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित सभी ग्रंथों के लेनेवाले स्थायी ग्राहक समझे जायँगे।

२—किसी प्रकार का शुल्क स्थायी ग्राहकों से नहीं लिया जाता। केवल स्थायी ग्राहकों की सूची में नाम तथा पता लिखवा देना चाहिए।

३—स्थायी ग्राहकों को २०) रु० सैकड़े कमीशन काट दिया जायगा। डाक व्यय अलग देना होगा।

४—पुस्तकों के प्रकाशित होते ही ग्राहकों के पास सूचना भेजने के दो सप्ताह के अनंतर पुस्तक वी० पी० से भेजी जायगी। जिस सज्जन को न लेना हो वे तुरंत सूचना देकर अनुगृहीत करेंगे।

५—वर्ष में चार रुपए मूल्य की पुस्तकें निकालने का प्रयत्न किया जायगा।

६—इस मालामें साहित्य, इतिहास आदि के उच्चकोटि के ग्रंथ ही निकालने का यथासाध्य प्रयत्न किया जायगा।